बंकिमचन्द्र

कपालकुण्डला

H
891.443
C 39 K

H
891.443
C39 K

TUTE OF
D STUDY
' SIMLA

Bankimchandra Chattopadhyaya

श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-110007

77889
12/3/92

प्रकाशक
सन्मार्ग प्रकाशन
16, यू० बी०, बैंग्लो रोड
दिल्ली-110007

H
891.43
C 39 K

संस्करण, 1990

मूल्य : रु० 20

Library IIAS, Shimla
H 891.443 C 39 K
00077889

मुद्रक :
कुमार आफसैट प्रिंटिंग प्रेस,
गली न० 3, विश्वास नगर, दिल्ली - 32

आज से अढ़ाई सौ साल पहले माघ महीने में एक नाव यात्रियों से लदी हुई गंगासागर से वापिस आ रही थी। उन दिनों समुद्री डाकू तथा पुर्तगाली लुटेरों के डर के कारण कोई भी नाव अकेले न आती थी क्योंकि अकेले आना खतरे से खाली न था। पर यह नाव तो अकेले ही आ रही थी। गहरे कुहरे तथा रात के अन्धकार के कारण मल्लाह दिशा भूलकर गलत रास्ते को चल पड़े और उन्हें यह न पता चला कि किस ओर जा रहे हैं।

नौका पर सवार सभी आदमी गहरी नींद सो गए। एक नवयुवक तथा एक बूढ़ा केवल यही दोनों न सोए थे। इनकी आँखों में शायद नींद न थी। दोनों आपस में बातें कर रहे थे।

बूढ़े ने बात काटते हुए मल्लाह से पूछा—"अभी कितनी दूर और जाना पड़ेगा?"

एक मल्लाह बोला—"कुछ ठीक से कह नहीं सकता।"

इस पर बूढ़े की भौंहें तन गईं। युवक बोला—"भला इसमें किसी का क्या दोष? आप तो व्यर्थ में चिन्ताग्रस्त हो रहे हैं, जो चीज भगवान के हाथ है उसे तो ज्योतिषी भी नहीं बतला सकते फिर ये अनजान क्या जानें।"

"चिन्ता न करूँ तो कहाँ जाऊँ। चोर मेरे खेत की समस्त धान काट कर ले गए हैं, अब मेरे बच्चे साल भर क्या खाएँगे।" यह खबर उसे नाव पर सवार होते ही मिली थी।

"तभी तो आपसे मैंने कहा था जब घर में देखभाल करने वाला और कोई न हो तो जाने का अभिप्राय?"

"जाता क्यों न? बुढ़ापे में भी अपना परलोक न सुधारूँ तो मेरा

जीवन कब तथा कैसे सफल होगा।"

"यह बात आप भूलते हैं जो पाप-पुण्य घर में बैठ कर मिलता है वह तीर्थ करने में नहीं ?"

"फिर तुम्हें क्या पड़ी थी जाने की ?"

"मुझे तो समुद्र की सैर का शौक था।"

इसी समय एक मल्लाह दूसरे से कहता हुआ सुनाई दिया—"सब सत्यानाश हो गया। क्या करें ? हमारी नाव न जाने किस दिशा में आ गई।

मल्लाह की आवाज सहमी हुई थी, सो बूढ़े ने समझा कुछ अनिष्ट होने वाला है। घबराकर पूछने लगा—"क्या बात है ?"

मल्लाह से कुछ उत्तर न बन पड़ा। उत्तर की परवाह न करते हुए युवक बाहर कुहरे में निकल आया। तब नाव के चारों ओर कनातें लगते थे, देखा सवेरा होने को है पर घना कुहरा छाया हुआ है। कुछ सुनाई न देने के कारण मल्लाह राह भूलकर भटक गये थे। समुद्र में बिना मौत न मर जाएँ, इसके लिए ही चिन्तित थे।

युवक ने बूढ़े को सब बताया तो नाव में स्त्री-बच्चे सब ने आफत खड़ी कर दी, एक हँगामा मच गया। पर किसी तरह युवक ने स्थिति को स्थिर कर शान्त किया। मल्लाहों से बोला—"प्रातः होने पर सब सोच लेंगे, अब चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं।"

मल्लाहों को उसकी बात समझ आ गई। थोड़ी देर बाद नदी के पाँचों देवताओं की जय बोलकर यात्रियों ने शोर मचा दिया।

"सूरज निकल आया। नाव चलाओ नाव।"

अधिक सवार बाहर निकलकर देखने लगे। सूरज निकल आने से चारों ओर प्रकाश फैल गया है। जहाँ पर नाव पहुँच गई थी वह समुद्र तो न था पर नदी का मुहाना इतना चौड़ा था कि समुद्र की तरह लगता था। जिधर देखो किनारा आसमान को छूता हुआ दिखाई देता था। चारों ओर अपार जलराशि, चंचल सूर्य-किरण मालाओं से चमकती हुई आकाश के छोर पर क्षितिज के साथ मिल रही है। निकट का जल यद्यपि गँदला दिखाई देता था। पर दूर स्वच्छ नीले रंग की जलराशि

दिखाई पड़ती थी। यात्रियों ने अनुमान लगाया कि समुद्र के बीच भँवर में आ फँसे हैं। फिर भी सौभाग्य की बात यह हुई कि एक किनारा निकट ही था। चिन्ता की बात न थी। सूर्य निकलने पर अनुमान लगा कर मल्लाहों ने बताया वह किनारा समुद्र का पश्चिमी किनारा था।

नाविकों ने यात्रियों से कहा—अभी ज्वार आने में देर है जब तक तुम रेत पर भोजन आदि कर लो। पर लकड़ी न होने के कारण सबको चिन्ता हुई। लेने जाए भी तो कौन, जंगल में किसी की हिम्मत न पड़ी। तब वृद्ध नवयुवक से बोला—तुम्हारे होते हुए क्या हमें उपवास करना पड़ेगा।

युवक कुछ सोचकर बोला—अच्छा मैं जाता हूँ। कोई आदमी मेरे साथ डण्डा लेकर आए। पर कोई भी जब जाने को तैयार नहीं हुआ तो वह अकेला ही चल दिया। उसे लकड़ी काटने का अभ्यास न था फिर भी किसी तरह उसने लकड़ियाँ काट लीं पर उन्हें उठाना उसके बस का न था। वह बड़ी मुश्किल से रुक-रुक कर लकड़ियाँ लिए किनारे पहुँचा, पर यह देखकर उसके रोंगटे खड़े हो गए कि वहाँ नाव न थी। फिर यह सोचकर कि ज्वार आने से चल दी होगी शायद थोड़ी देर बाद लौट आए; उसने अपने मन को धैर्य दिया पर जब बहुत समय बीत गया तो वह भूख तथा प्यास और भय के कारण भयभीत हो गया। क्योंकि पानी में कुछ शोर का अनुमान लगाकर नाविकों ने नाव चला दी, ताकि डूब न जाए। किसी की भी हिम्मत न पड़ी कि उस युवक को जंगल में से ढूंढ लाए। देखते-ही-देखते रेतवाली भूमि जलमग्न हो गई। लोग बड़ी मुश्किल से चढ़ पाए उनका सामान वहीं पर रह गया।

जल का बहाव प्रचण्ड रूप धारण कर रहा था मल्लाहों के मस्तक पर पसीने की बूँदें टपकने लगीं। उनके अथक प्रयत्न से नाव खतरे से तो बच गई पर पानी का बहाव उसे बहाए ले जा रहा था। वह रुक न सकी। जल का वेग जब कुछ मन्द हुआ तो वह बहुत दूर निकल आए थे। वहाँ से लौटकर जाना शायद फिर मौत को निमन्त्रण देना था। क्योंकि तब तक उन्हें दो दिनों तक उपवास करना पड़ा। यात्री लौटना न चाहते थे। उनको यकीन था कि युवकको बाघ ने मार डाला होगा।

इस प्रकार वह उसे छोड़कर अपने देश को चल दिए।

२

इधर नवयुवक को भी विश्वास हो गया कि या तो नाव डूब गई या यात्रियों ने उसे छोड़ दिया। वह युवक अपने मित्रों के लिए बहुत उदास था, पर पेट की चिन्ता में सब कुछ भूल गया। आस-पास कोई गाँव न दिखाई दिया। कहीं भोजन का प्रबन्ध होता उसे नजर आया न ही पीने का जल। नदी का जल एकदम खारी था। अकेले सुनसान जंगल में मृत्यु को सामने देखकर उसका मन चंचल हो उठा। जंगल के बाहर आते ही उसे एक विशाल समुद्र दिखाई दिया। उसे कुछ खुशी मिली। तभी घना अँधेरा छा गया, चारों ओर सन्नाटा था।

घूमते-घूमते वह थककर बैठ गया और सो गया। जब नींद खुली तो भयानक रात थी। उसे हैरानी हुई कि किसी बाघ ने भी उसे न खाया। उसे कुछ दूरी पर आग जलती हुई दिखाई दी। युवक के हृदय को कुछ खुशी मिली कि मनुष्य के बिना आग कौन जला सकता है। वह उसी ओर चल दिया पर वहाँ पहुँचकर वह दंग रह गया। आदमी आँखें मूँद हुए बैठा था। पहले तो वह युवक को न देख सका। वह कमर के नीचे बाघम्बर से ढका था। गले में रुद्राक्ष की माला थी। मुख पर लम्बी दाढ़ी तथा सिर पर जटाओं के होने से उसकी शक्ल पहचानना मुश्किल था। सामने लकड़ियों का कुंड जल रहा था जो युवक को अपनी ओर खींच लाया था। पर उसे कुछ दुर्गन्ध का भान हुआ। इसका कारण वह जानने को उत्सुक हुआ। उसने देखा वह एक शव पर बैठा था। उसके गले में पड़ी माला में हड्डियाँ पिरोई हुई थीं। यह देख उसके रोंगटे खड़े हो गये। उसने कापालिक की कहानी सुन रखी थी। वह एक भयानक कापालिक ही था यह उसने जान लिया था।

जब युवक वहाँ पहुँचा था तो वह कापालिक ध्यान-मग्न बैठा था सो वह नवकुमार को न देख सका ज्यों ही उसने आँखें खोलीं युवक को

देखकर पूछा—"कौन हो तुम ?"

"ब्राह्मण"—वह बोला।

"तब बैठो !" इतना कह वह फिर ध्यानमग्न हो गया।

पर नवकुमार बैठा न वहाँ—खड़ा ही रहा, उस सुनसान जंगल में एक आदमी को पाकर उसको ढाढ़स बँध चुका था।

कापालिक थोड़ी देर बाद उठा और युवक से बोला, आओ मेरे साथ

अगर नवकुमार इस समय भूख और प्यास से पीडित न होता तो कभी उसके साथ न जाता, पर संकट की स्थिति ने उसे ऐसा करने के लिए बाध्य कर दिया। इसीलिए वह किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा उसके पीछे चल पड़ा। रास्ते में वह बोला—मुझे भूख तथा प्यास लगी है क्या भोजन-सामग्री का सामान मिल सकेगा ?

कापालिक बोला—तुम्हें तो भैरवी ने भेजा है आओ वहाँ तुम्हें सब सामग्री उपलब्ध होगी।

जंगल में दोनों बहुत दूर निकल गए पर किसी ने कोई बात न की। अन्त में एक फूँस की झोंपड़ी में उसे प्रवेश करने को कह कापालिक भी अन्दर आया, उसने युवक की नजर बचाकर लकड़ी के चैले में आग जलाई। युवक ने देखा उस पेड़ की पत्तियों से बनी हुई झोंपड़ी में कई बाघम्बर पड़े थे। एक कोने में कुछ फूल-फल तथा एक कलश में पानी था। कापालिक बोला—जो कन्द-मूल हैं उन्हें खाकर तथा पानी पीकर यदि चाहो तो बाघम्बर बिछाकर आराम कर लेना ? पर जब तक मैं न आऊँ झोंपड़ी से बाहर न आना।

यवक कन्द-मूल खाकर तथा पानी पीकर उसी चर्म पर लेट गया। थकावट के कारण उसे नींद ने आ घेरा।

प्रातः होते ही वह कुटी से बाहर निकला और घर जाने को इच्छुक हुआ। वह कापालिक से अब मिलना न चाहता था यद्यपि कापालिक ने अभी तक कोई सन्देहजनक बात तो न की थी फिर भी उसे न जाने क्यों उससे भय लग रहा था। कापाकिल उसे झोंपड़ी से बाहर जाने को मना कर गया था सो यह सोचकर कि कहीं वह क्रोध में आकर कोई असाध्य कार्य न कर बैठे उसने यह विचार त्याग दिया।

तीसरा पहर भी खत्म होने को आया जब वह न लौटा, तो युवक को फिर भूख लगी पर अब वहाँ कुछ भी शेष न था। भूख के मारे उसके प्राण निकले जा रहे थे। इसलिए वह भोजन की तलाश में निकल पड़ा अभी शाम होने में कुछ ही समय बाकी था।

युवक ने तलाश कर फलों के वृक्ष खोजे। उन वृक्षों के फलों में से एक फल बादाम जैसा और खाने में स्वादिस्ट था।

अनजान व्यक्ति निश्चय ही जंगल में थोड़ी दूर जाने पर ही रास्ता भूल जाता है वही दशा युवक की भी हुई। थोड़ी दूर पर उसे जल का शोर सुनाई दिशा तो वह जंगल से निकल कर समुद्र के पास आ पहुँचा। वह फेनिल समुद्र था। युवक तट पर बैठकर समुद्र के स्वच्छ नीले जल को देखता रहा।

जब अन्धेरा छा गया तब उसकी चेतना लौटी। वह उठकर घर की ओर चला। तब उसे एक सुन्दर रमणी खड़ी दिखाई दी। संन्ध्या के प्रकाश में उसकी सुन्दरता और भी निराली दिखाई दे रही थी। उसका चेहरा पूर्णतया दिखाई न दे रहा था। फिर भी उसकी बड़ी-बड़ी आँखें स्थिर, स्निग्घ, गम्भीर और ज्योतिर्मय थीं।

ऐसे सुनसान जंगल में वह उस अपूर्व सुन्दरी को देखकर दंग रह गया। वह युवती भी अपनी चंचल आँखों से उसे लगातार देखे जा रही थी। दोनों की दृष्टि में आश्चर्य था।

कुछ देर वैसे ही खड़े रहने के बाद युवक से बोली—क्या तुम भटक गए हो?

उसकी मधुर आवाज सुन वह अपनी सुध-बुध खो बैठा। उससे कुछ उत्तर न बन पाया। उसकी आँखों में उसी युवती की मूर्ति विराजमान थी।

वह उत्तर न पाकर बोली—मेरे साथ आओ। वह मंत्रमुग्घ-सा उसके पीछे चल पड़ा। थोड़ी दूर जाने पर वह युवती अदृश्य हो गई। पर सामने ही वही कुटी उसे दिखाई दी जहाँ कापाकिल उसे छोड़ गया था।

कुटी में प्रवेश कर कुछ सोच विचार में डूबा हुआ एक जगह बैठ गया। उस सुन्दर रमणी की साकार मूर्ति उसकी आँखों में छाई हुई थी। वह सोचने लगा यह भी कापाकिल की माया होगी।

क्योंकि वह अपने ही विचार में उलझा था। उसने कुटी के अन्दर कोई ध्यान न दिया, इतनी रात बीत जाने पर भी एक लकड़ी जल रही थी, एक कोने में कुछ चावल रखे थे। उसने सोचा कापाकिल ही रख गया होगा। उसने चावल पकाकर भूख मिटाई। दूसरे दिन प्रातः उठकर वह समुद्र की ओर चल पड़ा। आज उसे मुश्किल न हुई क्योंकि कल के आने-जाने से वह रास्ते से परिचित हो चुका था।

सुबह के काम से निवृत्त होकर वह किसी की प्रतीक्षा में बैठ गया। पर प्रतीक्षा किसकी! वह पिछले दिन वाली रमणी के विषय में विचार-मग्न था। उसे वहाँ बैठे हुए शाम हो गई और अन्धेरा बढ़ने लगा। जब कोई न आया तो वह कुटी को लौट गया। वहाँ पर कापालिक उपस्थित था। उसी प्रकार मौन जमीन पर बैठा रहा।

नवकुमार नम्रतापूर्वक बोला—"बहुत देर से आपके दर्शन नहीं हुए महाराज! क्या क्रुद्ध हैं?"

"नहीं मैं तपस्या में मग्न था।"

नवकुमार ने घर जाने की इच्छा प्रकट की और कहा—"न तो मुझे रास्ता ही मालूम है न ही मेरे के पास रास्ते लिए खर्च ही है। आप से मिलने पर आप इसका कुछ प्रवन्ध कर सकोगे इसी आशा को लिए बैठा था। कापालिक उदास चित्त उठा और बोला—"अच्छा आओ मेरे साथ।" युवक घर लौटने की इच्छा से उसके पीछे चल पड़ा।

अभी सन्ध्या पूर्ण रूप से न हुई थी और कुछ प्रकाश शेष था। तभी युवक किसी के कमल स्पर्श से चौंक पड़ा। उसने देखा वही सुन्दरी उसके पास खड़ी है। वह प्रतिमा उसकी आँखों में पुनः उपस्थित हो गई।

वह मूर्ति मुंह पर उँगली रखे उसे मौन रहने का संकेत कर रही थी। युवक उसकी बात को भाँप गया और कर भी क्या सकता था, वह आश्चर्य से खड़ा रह गया। कापालिक को उसका तनिक भी भान न हुआ वह आगे बढ़ता गया। उसके कुछ दूर चले जाने पर युवती बोली—"न जाओ कहाँ जा रहे हो, लौटो, भागो यहाँ से!"

यह कहकर रमणी धीरे से आगे बढ़ गई। युवक उसे न देखकर आश्चर्य में डूब गया। वह भ्रम था या मायाजाल। पर आशंका किस बात की। वह तो मुझे भागने को कह रही थी। पर भाग कर जाए तो कहाँ, वह तो बिल्कुल अनजान था। तभी उसने देखा कि कापालिक उसे आता न देख लौट रहा है। वह बोला—"चलो देर क्यों कर रहे हो?"

युवक फिर उसके पीछे-पीछे चल दिया। कुछ दूर जाने पर एक कच्ची कुटिया दिखाई दी जिसके पीछे समुद्र-तट था। कापालिक कुटी की बगल से युवक को लेकर चला। तभी वह रमणी तीर की भाँति निकली और बोली—भागो—क्या तुम नहीं जानते कि मनुष्य की बलि से तांत्रिक की पूजा होती है?

युवक का डर के मारे शरीर पसीने से लथपथ हो गया। सुन्दरी की वह बात कापालिक को सुनाई दे गई तभी वह बोला—कपाल-कुण्डले!

बादलों की गर्जन की भाँति यह स्वर युवक को जान पड़ा। कपाल-कुण्डला ने इसका कोई उत्तर न दिया।

कापालिक नवकुमार का हाथ पकड़ कर ले जाने लगा। नरहिंसक हाथों का स्पर्श पाते ही उसका खून धमनियों में तीव्र गति से प्रवाहित होने लगा। उसमें न जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गई कि वह साहस-पूर्वक बोला—"छोड़ो मेरा हाथ।"

कापालिक बिना उत्तर दिए चलता रहा।

युवक—"कहाँ ले जा रहे हो मुझे?"

"पूजा के स्थान पर।"

"लेकिन क्यों?"

"तुम्हारी बलि दी जाएगी।"

युवक ने पूर्ण शक्ति से हाथ खींचा। अगर कापालिक के बदले कोई

और होता तो गिर जाता पर उसका तो शरीर तनिक भी न हिला। उसका हाथ कापालिक के हाथ में रहा। विवश हो वह चलता रहा।

कुछ दूरी पर ही पूजा का स्थान था। रेत के एक ढेर पर लकड़ी जल रही थी पूजा का सामान पड़ा हुआ था। युवक को निश्चय हो गया कि आज की पूजा का सामान उसे ही बनाया जाएगा। जंगल की सूखी बेलों की रस्सियों से उसके हाथ पैर बाँध कर उसे बालू पर लिटा दिया गया। युवक ने बहुत हाथ पैर पटके पर बन्धन-मुक्त न हो सका, मृत्यु उसकी आँखों के समक्ष नाच उठी। उसका खून जम गया। वह मन-ही-मन भगवान को स्मरण करने लगा। कापालिक उसे दल प्रयोग करता हुआ देखकर बोला—मूर्ख ! तेरा जीवन तो आज ही सफल हुआ क्योंकि तेरा शरीर भैरवी के काम आएगा। फिर तू किस लिए जीवन का मोह कर रहा है।

पूजा समाप्त कर लेने के बाद वह उठकर युवक के पास आया। युवक समझ गया कि मृत्यु अत्यन्त निकट है। उसने आँखें मूंद लीं क्योंकि वह अब केवल दो पल के लिए मेहमान था इस दुनिया में।

परन्तु अपना खड्ग न देखकर वह आश्चर्य में डूब गया। वह क्रोध से भरी आवाज में कपालकुण्डला को पुकारने लगा पर कोई उत्तर न पाकर वह पग बढ़ाता हुआ कुटी की ओर चल दिया। सारी कुटिया छान मारी पर खड्ग कहीं न मिला, न ही मिलना था।

खड्ग लिए कपालकुण्डला युवक के पास पहुँची। उसे बन्धन-मुक्त कर दिया और बोली—भागो, आओ मेरे पीछे।

यह कह वह मार्ग-प्रदर्शन करती हुई दौड़ पड़ी। नवयुवक ने भी उसका अनुसरण किया।

कापालिक को जब खड्ग न मिला और न ही कहीं कपालकुण्डला दिखाई दी तो उसे सन्देह उत्पन्न हुआ। पूजा के स्थान पर आकर देखा युवक वहाँ न था। टूटी हुई बिखरी लताओं को देख आश्चर्य में डूब गया तभी वह युवक का पीछा करने लगा। पर घोर अन्धकार में उसे कुछ दिखाई न दिया न ही कोई पद-ध्वनि सुनाई दी। कापालिक एक वृक्ष पर चढ़ कर भागने वालों को देखने लगा पर वृक्ष बरसात के कारण भीगा

हुआ था। उसके चढ़ते ही वह टूट गया साथ ही कापालिक औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़ा।

४

वह रमणी युवक को साथ लिए अँधेरी रात में भागी चली जा रही थी। युवक तो रास्ते से अनजान था सो युवती के पीछे-पीछे भागता रहा। पर कभी-कभी वह आगे निकल जाती और युवक पीछे रह जाता। तब युवती ने उसे अपना आँचल थमाकर भागना शुरू किया। कुछ दूर और भागने के बाद वह धीरे-धीरे चलने लगे। अब तक रात के दो पहर खत्म हो चुके थे। अन्धकार में कुछ भी दिखाई न दे रहा था। तभी उन्हें आगे चलकर एक देवालय दिखाई दिया।

युवती ने दरवाजा खटखटाया। अन्दर से आवाज आई—"कौन है?"

"दरवाजा खोलो।"

शायद वह मन्दिर का पुजारी था जिसने द्वार खोला था। वह युवती उसके गंजे सिर को पकड़ कर नीचे करती हुई उसके कान में कुछ कहने लगी।

पुजारी कुछ देर चिन्तामग्न खड़ा रहा। फिर बोला—महापुरुष क्या नहीं कर सकते। फिर तुम्हारा कुछ अनिष्ट न होगा। वह पुरुष कहाँ है? माँ की कृपा से सब ठीक होगा।

कपालकुण्डला ने उस युवक को अन्दर बुला लिया। पुजारी उससे बोला—आज तुम यहीं छिपे रहो कल तुम्हें मेदिनीपुर पहुँचा दिया जाएगा।

युवक ने अभी तक कुछ न खाया था। पुजारी ने भोजन की व्यवस्था की। वह तृप्त हो पुजारी द्वारा दी गई शैया पर विश्राम करने लेट गया। उसके सोते ही कपालकुण्डला समुद्र-तट पर जाने को तैयार हो गई।

पुजारी बोला, "तुम्हें मैं माता स्वरूप मानता हूँ इसीलिए तुम्हें माता से बढ़कर स्नेह करता हूँ: मेरी एक आज्ञा मानो। थोड़ा रुको, एक बात है ?"

"क्या बात है ?"

"मेरी प्रार्थना की अवहेलना न करना।"

"नहीं करूँगी, कुछ कहो भी तो।"

"मैं तुम से भीख माँगता हूँ वहाँ लौट कर न जाओ।"

"क्यों ?"

"तुम्हारी जान का खतरा है ?"

"यह तो मुझे भी मालूम है ?"

"फिर क्यों उद्यत हो रही हो जाने को ?"

"वहाँ न जाकर फिर कहाँ जाऊँ।"

"इस पुरुष के साथ भाग कर कहीं दूर देश चली जाओ !"

कपालकुण्डला सोच में डूब गई। उसे यूं देखकर पुजारी बोला—"क्या सोच रही हो ?"

"यही कि जब तुम्हारा शिष्य आया था तब तो कहते थे कि स्त्री का पुरुष के साथ जाना उपयुक्त नहीं और अब स्वयं ही मुझे इसके साथ भेजने को मजबूर कर रहे हो।"

"उस समय तुम्हारी मृत्यु का सन्देह न था। उस समय जिस शुभ कार्य की सम्भावना थी वह अब नामुमकिन है। चलो माता से अनुमति प्राप्त कर आवें।"

यह कह पुजारी हाथ में दीपक लिए कपालकुण्डला को साथ लेकर देवालय में जाकर काली की विकराल मूर्ति के सामने जा खड़ा हुआ। पुजारी ने आचमन ले पुष्प-पात्र से एक बेलपत्र उठाकर माता के चरणों पर मन्त्र पूत कर चढ़ा दिया। देखा बेलपत्र गिरा नहीं। जिस कामना से अर्घ्य किया था उसमें मंगल था। तब वह कपालकुण्डला से बोला, "देखो माता भी हम पर प्रसन्न हैं। इस युवक के साथ तुम स्वच्छन्द होकर जाओ ? मैं सांसारिक लोगों के चरित्र से परिचित हूँ अगर तुम भागकर इसके साथ जाओगी तो लोग तुम्हें हीन समझेंगे। घृणामयी नजरों से

देखेंगे। इसके गले में जनेऊ है इसलिए ब्राह्मण जान पड़ता है। विवाहिक बंधन में बँधकर जाना ही श्रेयकर है। नहीं तो मैं भी इस काम के लिए सहमत नहीं हूँ।

"विवाह" वह आश्चर्य से बोली। "यह नाम तो कई बार मैंने तुम से सुन रखा है पर इसमें करना क्या होता है।"

पुजारी मुस्करा कर बोला—विवाह ही स्त्री का धर्म है तभी वह सहधर्मिणी कहलाने की अधिकारी है। माता भी तो शिव की स्त्री हैं।

कपालकुण्डला उसकी बात समझकर बोली—तो यूं ही सही। पर कापालिक ने मुझे इतने दिनों तक पाल-पोस कर बड़ा किया, उन्हें छोड़ कर जाने को मन नहीं मानता।

"उसने तुम्हें अपने मतलब के लिए पाला है नहीं तो अब तक तुम कभी की बलि चढ़ गई होतीं। बिना स्त्री का सतीत्व नष्ट किए तांत्रिक विद्या पूर्ण नहीं होती। मैं भी तन्त्र शास्त्र के विषय में जानता हूँ। माता जगदम्बा सतीत्व को नष्ट करने वाली पूजा को कभी ग्रहण नहीं करतीं। इसलिए भाग जाने पर तुम कृतघ्न न मानी जाओगी। अभी तक सिद्धि का समय नहीं आया है इसलिए माता की भी यही इच्छा है कि तुम भाग जाओ। अगर कोई आशंका न होती तो तुम्हें अपने पास रख लेता। पर तुम्हें तो मालूम ही है कि यह स्थान भी सुरक्षित नहीं है।"

"विवाह स्वीकृत है मुझे।"

पुजारी कपालकुण्डला को बाहर बिठाकर स्वयं युवक के पास जाकर बोला—क्या आप जाग रहे हैं?

युवक दरअसल चिन्तित मन कुछ सोच रहा था बोला—आओ बैठो!

"तुम्हारा परिचय पाना चाहता हूँ।"

"मैं ब्राह्मण हूँ।"

"किस श्रेणी के।"

"राढ़ीय!"

"मैं भी राढ़ीय हूँ! मेरे वंश में कुलाचार्य भी हैं पर मैं तो अब माता की सेवा में हूँ। नाम क्या है आपका और निवास स्थान कहाँ है?"

"नवकुमार! सप्तग्राम का निवासी हूँ।"

"गोत्र क्या है आपका?"

"विन्ध्यघटी।"

"क्या आप विवाहित हैं।"

"हाँ।"

"स्त्री बच्चे!"

"हाँ हैं!"

नवकुमार अपना वास्तविक भेद छिपा गया। विवाह तो हो चुका था पर स्त्री न थी। रामगोविन्द घोष की लड़की पद्मावती से उसकी शादी हुई थी पर वह पिता के घर ही रही। जब तेरह साल की हुई तो उसके पिता उड़ीसा चले गए। लौटते वक्त उनका पठानों से युद्ध हो गया। पठान बड़े क्रूर थे। निरपराधी यात्रियों से बल का प्रयोग करते थे। रामगोविन्द उन्हें गाली दे बैठे। वह पकड़े गए, कैद से छूटने के लिए उन्हें अपना धर्म छोड़ना पड़ा।

इस प्रकार उन्होंने जान बचाई पर जाति-भ्रष्ट हो जाने से उन्हें बहिष्कृत कर दिया गया। नवकुमार के पिता तब जीवित थे। उन्होंने पुत्र-वधू का त्याग कर दिया। इस प्रकार पद्मावती की नवकुमार से कभी भेंट न हुई।

रामगोविन्द फिर बंगाल में न रहे। राजदरबार में उच्च पद प्राप्त हो जाने से वह सपरिवार मुसलमान नाम रख लिए। इसके बाद श्वसुर तथा पत्नी की कोई सूचना न पाकर नवकुमार का दिल संसार से उचाट हो गया। उसने और शादी न की।

पुजारी इस बात से अनभिज्ञ था। उसने सोचा दो शादियों में क्या बुराई है, बोला—जिस लड़की ने आपकी जान बचाई है आज उसी के प्राण संकट में हैं। जिसने उसे पाला-पोसा है वह क्रूर स्वभाव का है। लौटकर जाने पर उसे जीवित न छोड़ेगा। क्या आप उसकी प्राण-रक्षा नहीं कर सकते? "मुझे भी इसका डर है" वह बोला—क्या मेरे उस नर-हिंसक के पास लौटकर चले जाने पर इसके प्राणों की रक्षा हो सकती है?

पुजारी मुस्करा दिया और बोला—तुम तो मूर्ख हो! इससे तो

तुम्हारे साथ-साथ इसके भी प्राण न बचेंगे। केवल एक ही उपाय है।

"वह क्या ?"

"आप इसे लेकर अपने देश भाग जाएँ। यहाँ रहने से तुम एक दो दिनों में पकड़ लिए जाओगे। वह महापुरुष यहाँ आता ही रहता है। इसी से कपालकुण्डला का भाग्य अशुभ दिखाई पड़ रहा है।"

"मेरे साथ भागने में मुश्किल ही क्या है ?"

"यह किसकी कन्या है तथा किस कुल में पैदा हुई है। इसके विषय में आपको कुछ भी नहीं पता। आप इसे भगा ले जाकर अपने घर में रख भी सकेंगे इसका भी क्या भरोसा ? संगिनी बनाकर ले जाने से भी क्या लाभ ? अगर आपने इसे अपने घर में स्थान न दिया तो यह अनाथ कहाँ मारी-मारी फिरेगी ?"

नवकुमार—जिसने मेरी रक्षा की उसके लिए मैं सब-कुछ कर सकता हूँ। यह हमारे घर में ही रहेगी।"

पुजारी—ठीक है अगर आपके घर वाले पूछें ये किसकी स्त्री है तो क्या कहोगे ?

"आप ही इसका सही उत्तर मुझे बता दें। वही परिचय मैं वहाँ दे दूंगा।"

"मेरी भी इच्छा इसे भेजने को नहीं होती। तुम इतनी लम्बी राह कैसे पार करोगे। लोग तुम्हें देखकर क्या कहेंगे। मैं भी एक पुरुष के साथ उस कन्या को कैसे परदेश भेज दूं जिसे मैं बेटी-सम स्नेह करता हूँ।"

"फिर तुम भी चले चलो।"

"पीछे माता भवानी की पूजा कौन करेगा ?" नवकुमार क्षुब्ध हो बोला—"तो फिर आप कुछ उपाय नहीं कर सकते ?"

"इसका एक ही रास्ता है वह भी आपकी उदारता पर निर्भर करता है।"

पुजारी—तो सुनो ! यह एक ब्राह्मण कन्या है जिसे बचपन में लुटेरे उठा लाए थे। पर जहाज टूट जाने के कारण इसे समुद्र-तट पर छोड़ गए। बाकी कहानी यह स्वयं ही बता देगी। इसके बाद कापालिक ने इसे अपनी सिद्धि का उपकरण बनाकर पाला। वह जल्द ही अपना

प्रयोजन सिद्ध करता। पर अभी यह अविवाहित तथा पवित्र है। आप इसे ग्रहण कर लें। विवाह के बाद इसका कोई कुछ भी अनिष्ट न कर सकेगा। मैं यथा-शास्त्र विवाह सम्पन्न करा दूंगा।

नवकुमार उठ बैठा और सोचने लगा। उसे यूं विचार मग्न देखकर पुजारी बोला—सवेरे तक खूब सोचकर अपना मत प्रकट करना। फिर अकेले जाना चाहो तो चले जाना। मैं तुम्हे मेदिनीपुर का रास्ता बता दूंगा।

नवकुमार रात भर सोच में डूबा रहा। प्रातः ही पुजारी ने उससे पूछा—"कहिए क्या विचार है?"

नवकुमार—मुझे आपकी राय पसन्द है। मैं कपालकुण्डला को किसी भी कीमत पर अपने से अलग न करूँगा। पर इसका कन्यादान कौन करेगा?"

पुजारी का चेहरा फूल की भाँति खिल उठा क्योंकि आज माता ने उसकी पुकार सुन ली थी। इसलिए वह बोला, "कन्यादान मैं करूँगा।" वह बोले यद्यपि आज लग्न दिन नहीं है फिर भी विवाह में कोई विघ्न नहीं, मैं गोधूलि-लग्न में कन्यादान कर दूंगा। तुम आज केवल व्रत रखना और शेष आचार-व्यवहार अपने घर जाकर मना लेना। एक दिन तुम्हें उस महापुरुष से छिपाकर रख सकता हूँ। पश्चात् तुम पत्नी सहित अपने घर चले जाना।

नवकुमार के उद्यत हो जाने पर, सन्ध्या की गोधूलि में दोनों का विवाह हो गया। कापालिक को इसकी भनक भी न मिली। दूसरे दिन दोनों प्रातः ही चल पड़े। पुजारी उन्हें मेदिनीपुर के रास्ते पर ले चला।

कपालकुण्डला अत्यन्त भक्तिपरायणा थी। बेलपत्र को प्रतिमा के चरणों से च्युत होते देखकर वह रो दी। उसने पुजारी से भी बताया। वह भी यह सुनकर उदास हो गये। बोले—अब क्या हो सकता है पति के साथ-साथ तुम्हें भी सती होना पड़ेगा इसलिए धैर्य से काम लो।

तीनों मौन चलते गए। प्रातः होते ही वह मेदिनीपुर पहुँचे। तब पुजारी उनसे बिदा ले लौट आया। कपालकुण्डला को भी यूं बिछुड़ते हुए रुलाई आ गई। संसार में उसका एक मात्र सुहृद था जिससे वह बिछुड़

रही थी।

पुजारी का भी हृदय भर आया। वह भीगी आँखों को पोंछते हुए कपालकुण्डला से बोला—"देख बेटी! तुझे तो मालूम ही है कि भवानी की कृपा से मुझे धन का अभाव नहीं है। तेरी धोती के किनारे से मैंने जो कुछ बाँधा है उससे पति को कहकर एक पालकी तथा दासी कर लेना। मुझे अपना ही समझकर भुला न देना।"

पुजारी रोता हुआ विदा हुआ तो कपालकुण्डला भी भीगी पलकों से नवकुमार के साथ चल दी।

५

नवकुमार ने मेदिनीपुर पहुँचकर कपालकुण्डला के लिए दासी तथा पालकी का प्रबन्ध कर लिया। पैसे की कमी के कारण वह स्वयं पैदल चल पड़ा। नवकुमार थक गया था इसलिए दोपहर के भोजन के बाद पालकी उसे पीछे छोड़कर आगे निकल गई। सन्ध्या समय शीतऋतु में आकाश में बादल छाए हुए थे इसलिए पूर्ण अन्धकार का राज्य था।

रात्रि में कुछ बूंदा-बांदी भी शुरू हो गई। नवकुमार कपालकुण्डला के लिए व्याकुल हो उठा। उसे यकीन था कि सराय में भेंट हो जाएगी पर वह वहाँ भी न थी। नवकुमार शीघ्रता से अँधेरे में ही आगे बढ़ा तभी किसी कड़ी चीज से उसका पाँव टकरा गया। टकराते ही वह चीज टूट गई। नवकुमार ने महसूस किया कि वह पालकी ही टूटी पड़ी है। भय से उसका हृदय कांप उठा। उसे कपालकुण्डला की चिन्ता हुई पर आगे बढ़ते ही किसी गुदगुदी वस्तु से वह टकरा गया। उसने टटोल कर देखा कोई मनुष्य था। उसने उसकी नाक के पास हाथ रखकर देखा तो स्वास न चल रहा था। फिर यह विचार आया यह शब्द कैसा, शायद वहाँ कोई व्यक्ति हो, वह बोला—क्या कोई जीवित है?

"है।"

"तुम कौन हो?"

"तुम कौन हो ?"

नवकुमार को यह स्वर स्त्री का जान पड़ा उसने घबरा कर पूछा—"कपालकुण्डला हो क्या ?"

स्त्री बोली—"मैं किसी कपालकुण्डला को नहीं जानती। हम पर डाकुओं ने आक्रमण कर दिया है।"

यह सुनकर नवकुमार बोला—क्या हुआ है तुम्हें ?

"डाकुओं ने मेरे आदमियों को मार भगाया एक तो मर ही गया है। वे मुझे पालकी से बांध कर सब गहने ले गये हैं।

नवकुमार ने देखा वह सचमुच पालकी से बँधी थी। उसको बन्धन मुक्त कर बोला—"क्या चल सकती हो।"

"नहीं, मेरे पैर में लाठी लगी है। पैर में दर्द है थोड़ी सहायता मिलने पर उठ सकती हूँ।"

नवकुमार ने हाथ बढ़ाया, सहारा पाकर स्त्री उठ गई। उसने पूछा—"क्या पैदल चल सकोगी ?"

इसका जवाब न देकर वह बोली—किसी को अपने पीछे आते हुए नहीं देखा क्या आपने ?

चट्टी निकट ही थी। थोड़ी देर के बाद वह उस स्त्री को लेकर चट्टी में पहुँचा। देखा वहाँ पर कपालकुण्डला पहले से ही उपस्थित थी। दासियों ने उसके लिए एक कमरा ले लिया था।

नवकुमार अपने साथ आई हुई स्त्री को बगल की कोठरी का प्रबन्ध कर, दे आया। मालकिन एक दीपक ले आई। उजाला होने पर नवकुमार ने देखा वह एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री थी। उसकी रूप राशि तरंग से उसकी यौवन शोभा सावन की नदी की तरह छलछला रही थी।

नवकुमार उसे मन्त्रमुग्ध-सा देखता रहा। तभी स्त्री ने हँसकर पूछा—"इससे पहले क्या आपने कभी स्त्री नहीं देखी ?"

"इतनी सुन्दर नहीं।"

"क्या एक भी नहीं।"

"एक तो कह नहीं सकता !"

"फिर वह आपकी गृहणी होगी।"

"क्यों, गृहणी की बात ही क्यों सोचते हो ?"

"बंगाली लोग अपनी गृहणी को सबसे सुन्दर

"मैं बंगाली जरूर हूँ पर आप भी तो उन्हीं रही हो। किस देश में रहती हो ? युवती ने अपनी को दिखा कर कहा—मैं अभागिन बंगाली नहीं पश्चिम मानी हूँ।"

नवकुमार आश्चर्य में डूब गया, क्योंकि उसका मानी का जरूर था पर आवाज तो बंगाली जैसी थी।

थोड़ी देर बाद वह बोली—आपने बड़ी परिचय तो ले लिया पर अपना नहीं बताया। उसरूपसी है ?

"मेरा घर सप्तग्राम है।'

यह सुनकर उसने मुंह दीपक की ओर मोड़ मेरा नाम मोती है और आपका ?

"नवकुमार शर्मा।"

सहसा दीपक बुझ गया तभी नवकुमार ने दूसरा दीपक लाने को कहा। थोड़ी देर बाद वहाँ एक । उसे देख वह स्त्री बोली—"इतनी देर क्यों लगी ?" को इकट्ठा करने में हम लोग पालकी से बहुत पीछे को टूटा-फूटा तथा आपको वहाँ न देखा हम चिन्तित लोग वहीं हैं केवल मैं ही आपको तलाश करने के ।"

"उन सब को ले आओ।"

नौकर सलाम कर चला दिया। रमणी मग्न हो गई, उसके नेत्र गीले थे। नवकुमार कि उस मोती बीबी ने पूछा—आप ठहरे कहाँ कमरे में ?

"आपके कमरे के सामने एक पालकी रखी है आपके साथ ?"

"हाँ मेरी स्त्री है।"

मोती व्यंगपूर्वक बोली—क्या वही अद्वितीय आप

जिक्र [illegible]

"[illegible] स्वयं समझ लेंगी ?"

"[illegible] मैं मिल सकती हूँ ?"

[illegible]

मेरी [illegible] की बड़ी इच्छा हो रही है। अभी आप जाएँ थोड़ी देर [illegible] सूचित कर दूँगी।

[illegible] दासी एक सन्दूक लिए उपस्थित हुए उन्होंने बताया कि [illegible] आपको बुलाया है।

न[illegible] पहुँचा तो उस रमणी की सज-धज देखकर हैरान [illegible] बहुमूल्य वस्त्रों तथा सुन्दर अलंकारों से सुसज्जित थी। बोली [illegible] आपकी पत्नी से मिल आऊँ।

वह [illegible] लेकिन गहनों की क्या जरूरत थी। मेरी पत्नी के पास तो गहने [illegible] चलो ?

नवकु[illegible] साथ चल पड़ा।

"गहने [illegible] के लिए तो पहने जाते हैं। स्त्रियों के पास गहने हों और वे दिखाएँ न, यह नहीं हो सकता।"

वहाँ [illegible] कपालकुण्डला नीचे फर्श पर बैठी थी। दीपक टिमटिमा [illegible] केश-राशि से पिछला भाग अन्धेरे में था। मोती बीवी [illegible] आई।

वह [illegible] कपालकुण्डला के चेहरे को देखने लगी और देखते ही [illegible] बन्द हो गया, वह गम्भीर बन गई। अपने नेत्रों से वह [illegible] सूरत को देखती रह गई। मोती बीवी उस पर लट्टू हो [illegible] कपालकुण्डला के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

थोड़ी [illegible] मोती बीवी अपने आभूषण उतार कर उसे पहनाने लगी। [illegible] कपालकुण्डला को पहना दिये। वह मौन बैठी रही।

नव[illegible]—आप यह क्या कर रही हैं? पर वह कुछ न बोली।

सब [illegible] के पश्चात् वह बोली—ऐसा फूल तो राजाओं

[illegible] INSTITUTE OF ADVANCED [illegible] Acc. No. 77889

के उद्यान में भी नहीं खिलता। काश इसे राजधानी में देख पाती। इसी लिए इसे गहने पहना रही हूँ। ये गहने इसी के योग्य हैं। इन्हें पहनकर कभी-कभी मुझे याद कर लेना।

नवकुमार हैरान होता हुआ बोला—इतने सारे बहुमूल्य गहने लेकर भला मैं क्या करूँगा और लूँ भी तो क्यों? इन्हें लिए बिना भी मैं आपको भुला न सकूँगा।

मोती बोली—मेरे पास ढेर सारे अलंकार हैं इन्हें गहनों से वंचित न हो सकूँगी। इन्हें पहनाकर मुझे बहुत आनन्द मिला है, उसमें आप क्यों रुकावट डाल रहे हैं।

यह कह मोती बीबी ने अकेले में कपालकुण्डला से पूछा—"बीबी यह कौन थे?"

युवती ने उत्तर दिया—"मेरा पति!"

६

मोती बीबी ने उन गहनों को रखने के लिए एक सन्दूक दिया। नवकुमार ने एक दो गहने कपालकुण्डला के पास रहने दिए, बाकी सब सन्दूक में बन्द कर दिए। दूसरे दिन मोती बीबी वर्दमान तथा नवकुमार पत्नी सहित सप्तग्राम को रवाना हो गए।

कपालकुण्डला को एक पालकी में बिठाकर सन्दूक उसके पास रख दिया गया। कहार पालकी को लेकर नवकुमार को पीछे छोड़ गए। कपालकुण्डला दरवाजा खोल चारों ओर देखने लगी। तभी एक भिखारी भीख माँगता हुआ दिखाई दिया। वह कपालकुण्डला से भीख माँगने लगा।

कपालकुण्डला—मेरे पास कुछ भी नहीं है क्या दूँ तुम्हें?

भिक्षुक कपालकुण्डला को शरीर पर गहने पहने हुए देखकर बोला—"यह क्या कह रही हो तुम्हारे पास तो इतने हीरे मोती के गहने हैं।"

कपालकुण्डला—गहना पा जाने से सतुष्ट हो जाओगे?

भिखारी—और नहीं तो क्या ?

कपालकुण्डला ने निष्कपट भाव से सभी गहने अपने शरीर से उतार-कर सन्दूक समेत उसे दे दिये ।

भिखारी क्षण भर को विह्वल हो गया फिर गहने लेकर शीघ्रता से भाग गया । दास-दासियों को इसका तनिक भी पता न चला क्योंकि यह काम पलक झपकने के बराबर ही हो गया । कपालकुण्डला सोचने लगी भिक्षुक आखिर इस तरह क्यों भागा ।

नवकुमार कपालकुण्डला को लिए जब घर पहुँचा तो उसका पिता परलोक सिधार चुका था । । घर में विधवा माँ तथा दो बहिनें थीं । बड़ी बहिन विधवा थी, दूसरी सधवा होते हुए भी विधवा समान थी क्योंकि वह एक कुलीन स्त्री थी ।

नवकुमार के परिवार के तथा अन्य सभी लोगों की यही धारणा थी कि उसे बाघ ने मार कर मृत्यु का ग्रास बना लिया है । क्योंकि नाविकों ने यही अफवाह फैला दी थी जिसे सुनते ही घर में कुहराम मच गया । मृत्यु की खबर पाकर माता तो मृतप्राय: ही हो गई । जब नवकुमार सपत्नी घर पहुँचा तो किसी को यह पूछने की फुर्सत कहाँ थी कि वह कौन है तथा किस जाति से है । मारे खुशी के सब नाच उठे ।

नवकुमार की माता ने बहू को आदरपूर्वक घर में बिठाया । जब नवकुमार ने परिवार वालों को उसे सहर्ष स्वीकार करते देखा तो उसका दिल बल्लियों उछलने लगा । उसके हृदय में कपालकुण्डला के प्रति अगाध श्रद्धा तथा प्रेम था फिर घर में उसके अनादर होने की जो आशंका थी वह अब दूर हो चुकी थी ।

नवकुमार का घर एक सुनसान जंगल के पास था । वहाँ मनुष्यों का आगमन इतना अधिक न था । सामने आधे कोस के अन्तर पर एक नदी बहती थी जिसने जंगल का बहुत सा भाग घेर रखा था । मकान ईंटों का बना था । पर देश व काल के अनुसार इसे साधारण मकान कोई नहीं कह सकता था । दुमंजिला मकान अवश्य था । पर कम ऊँचा । आज कल के एक मंजिल मकान जितना ।

मकान की छत पर दो स्त्रियाँ खड़ी हुई शाम की सुन्दर शोभा का

दृश्य देख रही थीं। एक ओर सघन वन था दूसरी ओर चाँदी के तार के समान सफेद बहती हुई नदी अपनी निराली शोभा दिखा रही थी। ये दोनों युवतियाँ अटारी के ऊपर खड़ी थीं, उनमें से एक के शरीर का रंग चन्द्रमा की तरह उज्ज्वल तथा बिखरे हुए केश प्राय: उसके आधे मुख को छिपाये हुए थे। दूसरी काले रंग की षोडसी सुमुखी। कद छोटा तथा मुँह भी छोटा था। मुँह का ऊपरी हिस्सा यानी मस्तक घुँघराले बालों से घिरा हुआ था। चन्द्रकिरण-सी शोभायमान कपालकुण्डला तथा काले रंग वाली षोडसी उसकी ननद श्यामा थी।

श्यामा भौजाई को कभी प्यार से 'बहू' कभी सम्मानपूर्वक 'बहन' तथा कभी मृण्मयी कहकर बुलाती। उसका कहना था कि कपालकुण्डला नाम से भय आता है इसलिए मृण्मयी नाम ज्यादा उपयुक्त है उसके लिए।

श्यामा बचपन का एक गीत गाती हुई मृण्मयी से बोली—"क्यों भाभी! क्या हमेशा तपस्विनी ही बनी रहोगी?

मृण्मयी—तो क्या मैं तपस्या कर रही हूँ?

श्यामा—तो फिर अपने खुले केश सँवार क्यों नहीं लेतीं।

मृण्मयी ने मुस्कराते हुए अपने लहराते बाल श्यामा के हाथों से छुड़ा लिए।

श्यामा—अच्छा तो फिर मेरी तरह शृंगार करके एक बार मेरी तमन्ना भी पूर्ण कर दो। आखिर कब तक यूँ योगिनी बने काम चलेगा।

"जब तेरे भैया से मेरी मुलाकात हुई तब तो मैं योगिनी ही थी।"

"अब और ऐसे न रह सकोगी।"

"क्यों न रह सकूँगी?"

"मैं तुम्हारा योग तोड़ दूँगी। क्या पारस पत्थर के चमत्कार के विषय में तुम्हें नहीं मालूम?"

"नहीं, मैं नहीं जानती।"

"पारस को छूते ही लोहा भी स्वर्ण बन जाता है।"

"वह कैसा होता है।"

"पुरुष की हवा लगने से योगिनी गृहणी का रूप धारण कर लेती

है। तूने भी उसे स्पर्श कर लिया है। यह कह श्यामसुन्दरी फिर सुर प्रलापने लगी।

मृण्मयी बोली—आ गया समझ में। कल्पना करो मैंने पारस पत्थर छू लिया और मैं सोना बन गई हूँ। चोटी कर ली, उसमें फूल लगा लिए गले में चन्द्रहार पहन लिया और मैं बन गई सोने की पुतली। यह सब तो हो चुका। परन्तु इसके होने से मुझे क्या सुख मिला?

"बताओ फूल के खिलने से क्या सुख होता है।"

"लोगों को उसे देखने में सुख का अनुभव होता है पर फूल को क्या वही सुख प्राप्त होता है। श्यामसुन्दरी गम्भीर हो गई, उसकी मुस्कान लुप्त हो गई। प्रभात समीर से स्पर्श पाकर नीलकमल जैसे नेत्र विस्फा-रित चमक उठे।

वह बोली—फूल को क्या सुख है इसका वर्णन तो मैं नहीं कर सकती मैं कभी फूल बनकर खिल ही न सकी। तुम्हारी तरह कली होती तो खिलकर अवश्य ही अनुभव कर लेती।

फूल को खिलने में ही सुख मिलता है। पुष्प-रस पुष्प-गंध दूसरों को बाँटते रहने में ही उसका सुख विद्यमान है। आदान-प्रदान ही संसार के सुखों का मूल है अन्य कुछ भी नहीं। वन में रह कर मृण्मयी कभी यह बात हृदयंगम नहीं कर सकी इसलिए इस बात का उसके पास कोई जवाब न था।

श्यामा उसे चुप देख बोली—अच्छा इसे छोड़ो, यह बताओ कि तुम्हें क्या सुख है इसमें?

कुछ सोचकर वह बोली—बता नहीं सकती, शायद वन-वन डोलने में ही मुझे अधिक सुख का अनुभव होता था।

श्यामसुन्दरी निस्तब्ध रह गई। वह क्षुब्ध भी हुई। कुछ रुष्ट-सी होकर बोली—अब क्या लौट जाने का कोई उपाय नहीं है?"

"अब तो कोई उपाय नहीं है?"

"तो फिर क्या करोगी?"

"पुजारी कहा करता था—यथा नियुक्तोसिमतथा करोमि।"

श्यामा ने मुँह पर कपड़ा रखते हुए हँसकर कहा—बहुत ठीक है

पण्डित जी ! अब क्या करोगी ?

मृण्मयी दीर्घ श्वास लेकर बोली—जो भाग्य में बदा है उसे कौन मिटा सकता है ? जो भाग्य में लिखा जा चुका है उसे तो भोगना ही पड़ेगा ।

"क्यों भाग्य में क्या है सुख ही तो लिखा है । तुम व्यर्थ में ठंडी साँस क्यों भर रही हो ।"

मृण्मयी—सुनो ! जब मैं स्वामी के साथ यात्रा करने को उद्यत हुई तो मैं माता भवानी के चरणों पर बेल-पत्र अर्पित करने गई । क्योंकि मैं कोई भी काम बिना माता की आज्ञा लिए न करती थी । यदि उस कर्म का फल शुभ होता तो माँ बेल-पत्र ग्रहण कर लेती यदि अमंगल होता तो गिरा देती । अपरिचित व्यक्ति के साथ अनजान देश में जाते कुछ आशंका पैदा हुई क्योंकि माता ने बेल-पत्र ग्रहण न किए, इसी कारण भाग्य में क्या लिखा है यह मैं क्या जानूं ।

यह कह मृण्मयी मौन हो गई । पर श्यामसुन्दरी अमंगल की कल्पना मात्र से ही सिहर उठी ।

७

कपालकुण्डला को साथ लिए नवकुमार जब सराय से घर की ओर चले थे तो मोती बीबी भी बर्दमान रवाना हो चुकी थी । जब तक मोती बीबी अपनी यात्रा पूरी करें, तब तक उठकर कुछ हाल जान लेना जरूरी है । मोती बीबी का चरित्र पाप तथा पुण्य का विचित्र संगम था ।

जब उसके पिता ने इस्लाम धर्म को स्वीकृत कर लिया तो उसका नाम पद्मावती से लुत्फुन्निया रख लिया गया । मोती बीबी उसका नाम न था । केवल कभी-कभी देश-विदेश भ्रमण करते समय इस नाम को धारण कर लेती थी । उसके पिता ढाका में सरकारी काम में नियुक्त थे । वहाँ उनके स्वदेशी लोगों का आना-जाना रहता था । अपने जाने पहचाने लोगों के बीच समाजच्युत होने के बाद रहना उन्हें सुहाता न

था इसलिए वह वहाँ से आगरा चले गए। अकबर बादशाह ने शीघ्र ही उन्हें उच्च पद पर नियुक्त कर दिया। इधर लुत्फुन्निया दिन-ब-दिन युवा होने लगी। आगरे में उसने संस्कृत, फारसी तथा नृत्य एवं गायन विद्या भी प्राप्त कर ली। राजधानी की रमणियों में उसकी प्रसिद्धि हो गयी।

दुर्भाग्यवंश विद्याध्ययन उसका जितना अधिक था नीति के सम्बन्ध में वह उतनी ही निपुण थी।

लुत्फुन्निया को जवान होते ही प्रतीत हुआ कि उसकी मनोवृत्तियाँ दुर्दम वेगवती हैं। इन्द्रिय-निग्रह की तनिक भी शक्ति उसमें नहीं है। अमुक व्यक्ति अच्छा है या बुरा, ऐसा सोचकर कभी वह काम न करती थी। जो अच्छा लगता वही करती। यौवनावस्था के सभी दोष उसमें मौजूद थे। उसका पहला पति जीवित था इसीलिए किसी भी उमरा ने उससे शादी न की। उसका विवाह के प्रति विशेष लगाव न था। उसने सोचा फूल-फूल पर सर्वत्र विहरण करने वाली तितली के पंख क्यों कटवा दूं। आखिर उसका कालिमामय कलंक चारों ओर फैल गया। पिता ने निराश होकर उसे घर से निकाल दिया।

लुत्फुन्निया गुप्त रूप से जिनसे सम्बन्ध रखती थी उनमें राजकुमार सलीम भी थे। पर कुल के कलंकित होने के भय से वह उसे महल में न रख सके। जब राजा मानसिंह की बहन सलीम की प्रधान महिषी हुई तो लुत्फुन्निया को उसकी प्रधान अनुचरी बना दिया गया। लुत्फुन्निया बेगम की सखी बन गई। परोक्ष रूप से वह युवराज सलीम की अनुग्रह पात्री बन गई।

सलीम के हृदय पर अधिकार पा जाने पर वह पटरानी बनने के सुन्दर स्वप्न सँजोने लगी। महल के समस्त लोग इस बात को निश्चित रूप से ही समझ चुके थे। ऐसे सुख सपने से उसकी नींद टूटी। जब अकबर बादशाह के खजान्ची ख्वाजा अब्बास की पुत्री मेहरुन्निसा उससे ज्यादा रूपवती निकली! एक दिन ख्वाजा साहब ने सलीम को अपने घर निमंत्रित किया। सलीम से उसकी मुलाकात हुई तो उसी दिन से वह उसे दिल दे बैठा पर मेहरुन्निसा का सम्बन्ध शेर अफगान

नामक एक पठान से पक्का हो चुका था। सलीम ने अपने पिता अकबर द्वारा इस सम्बन्ध को तोड़ना चाहा। पर न्यायप्रिय अकबर ने इसे स्वीकार न किया। विवश होकर सलीम को सबर करना पड़ा। पर जैसे ही बादशाह अकबर ने इस दुनिया से मुँह फेरा कि सलीम ने मेहरुन्निसा को अपनी प्रधान महिषी बना लिया। लुत्फुन्निया के सुन्दर सपने पर पानी फिर गया। उसने सिंहासन प्राप्त करने की इच्छा त्याग दी।

जब बादशाह अकबर की परमायु पूरी हो चली थी तो उस समय लुत्फुन्निया ने प्रधान महिषी बनने के इरादे से एक दुस्साहसपूर्ण कार्य कर डाला।

राजा मानसिंह की बहन सलीम की पटरानी थी। एक दिन लुत्फुन्निया प्रधान महिषी को इस पद के ग्रहण को बधाई दे रही थी। खुसरू की माता बोली—प्रधान महिषी होना तो महत्वपूर्ण है ही, पर सर्वश्रेष्ठता तो उसकी है जिसका पुत्र बादशाह बने।

यह सुन लुत्फुन्निया बोली—यह भी क्या कठिन है आपकी इच्छा पर निर्भर करता है?

बेगम—"वह कैसे?"

चतुर लुत्फुन्निया ने उसे उकसाया—आप युवराज खुसरू को सिंहासन पर बिठाइए।

बेगम ने कुछ उत्तर न दिया। उस दिन यह प्रसंग यहीं पर खत्म होकर रह गया। पति के बदले पुत्र सिंहासन का अधिकारी बने, बेगम यह कदापि न चाहती थी। मेहरुन्निसा का और सलीम का प्रेम जैसे लुत्फुन्निया को चैन नहीं लेने दे रहा था वैसा ही वह बेगम के लिए कष्टप्रद था। मानसिंह की बहन एक साधारण कन्या की आज्ञाकारिणी बने यह भला कैसे हो सकता था। दूसरे दिन फिर यही प्रसंग चला। दोनों ने विचार-विमर्श किया।

सलीम के स्थान पर खुसरू का अकबर के सिंहासन पर बैठाना कोई असम्भव काम न था। लुत्फुन्निया ने बेगम को अच्छी प्रकार समझा दिया कि मुगल-साम्राज्य राजपूतों के ही बाहुबल पर टिका हुआ है और आज भी है। उस राजपूत जाति के शिरोमणि राजा मानसिंह हैं और जो

खुसरू के मामा हैं। और मुसलमानों के प्रधान मन्त्री आजमखान उसके श्वसुर हैं। इन दोनों की मदद करने को कौन उद्यत न होगा। राजा मानसिंह को मनाने का काम आपका ठहरा बाकी आजमखान तथा दूसरे उमराओं को मैं स्वयं मना लूँगी। आपके आशीर्वाद से मैं सफल हो जाऊँगी। पर एक भय है कि सिंहासनारूढ़ हो जाने के उपरान्त कहीं युवराज खुसरू दुराचारिणी को महल से न निकाल दें।

बेगम अपनी सखी का अभिप्राय: समझ कर हँस कर बोली—तुम जिस उमरा को चाहोगी उसी को तुम्हारा पाणिग्रहण करना पड़ेगा। तुम्हारा पति पंचहजारी मनसबदार होगा।

लुत्फुन्निया प्रसन्न हुई। उसका लक्ष्य पूर्ण हो चुका था। उसका भी यही आशय था, अगर दासता ही स्वीकार करनी थी तो मेहरुन्निसा की दासी बनने में क्या हानि थी। इससे बढ़कर सौभाग्य तो इसी में था कि किसी राजपुरुष के सर्वाधिकार प्राप्त संगिनी बन जाए।

इसी प्रलोभन के कारण लुत्फुन्निया इस काम में लगी। सलीम जो उसकी उपेक्षा कर मेहरुन्निसा के लिए इतना आतुर हो गया था कि उससे इसके प्रतिशोध की भावना उसमें जाग उठी थी।

खाँ आजम तथा दिल्ली के अन्य उमराव लुत्फुन्निया के इशारों पर नाचते थे। खाँ आजम अपने दामाद की भलाई में सहायक न हों इसमें शक का कोई स्थान न था। अन्य उमराव भी उद्यत हो गए। खाँ आजम लुत्फुन्निया से बोले—अगर असफलता का मुँह देखना पड़ा तो तुम्हारी तथा हमारी खैर नहीं।

"असफलता हो जाने की स्थिति पैदा होने पर भी बचाव का कोई मार्ग ढूँढ़ रखना जरूरी है।"

लुत्फुन्निया बोली – कहो आपका क्या विचार है।"

खाँ बोले—उड़ीसा के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं। केवल वहीं मुगलों का शासन इतना मजबूत नहीं है। वहाँ की सेना का हमारे साथ होना जरूरी है। मैं कल यह अफवाह फैला दूंगा कि उड़ीसा के मनसबदार जो तुम्हारे भाई हैं युद्ध में घायल हो गए हैं। तुम इसी बहाने उन्हें देखने उड़ीसा चली जाना। वहाँ का कार्य समाप्त कर लौट आना।

लुत्फुन्निया इस परामर्श से तुरन्त सहमत हो गई। जब वह अपना कार्य कर लौट रही थी तभी उसकी नवकुमार से भेंट हुई थी। जिस दिन नवकुमार से विदा होकर उसने वर्दमान को प्रस्थान किया उस दिन वह वहाँ न पहुँच दूसरी सराय में ठहर गई। वह पेशमन से बातें करने लग गई। तभी एक पेशमन से बोली—देखा मेरे पति को, क्या सुन्दर थे ? पेशमन हैरान होकर पूछने लगा—"क्या मतलब ?"

मोती—सुन्दर थे कि नहीं ?

नवकुमार से पेशमन खीझ गई थी क्योंकि जिन गहनों को पाने की उसकी साध थी वही गहने मोती बीवी कपालकुण्डला को दे आई थी। उसने सोचा था एक दिन मैं माँग लूंगी। पर उसकी आशाएँ जल कर खाक हो गईं इसलिए वह नवकुमार तथा कपालकुण्डला के प्रति मन में द्वेष भाव लिए थी। वह बोली—दरिद्र ब्राह्मण को सुन्दर तथा कुरूप होने से क्या ?

उसका आशय समझ कर मोती बीबी बोली—दरिद्र ब्राह्मण यदि उमरा हो जाय तो···?

"यह कहने का मतलब ?"

"क्यों क्या तुमने नहीं सुना बेगम के कथनानुसार यदि ख़ुसरू बादशाह हुए तो मेरा पति उमराव होगा।

"यह तो मैं जानती हूँ पर तुम्हारा पूर्व पति उमराव कैसे बनेगा।"

"और कौन है मेरा पति ?"

"जो नया बनेगा।"

"तो क्या मुझ जैसी सती स्त्री के भी दो पति होंगे, यह क्या अनुचित बात कह रही हो।"

—ऐं, वह कौन है ?"

पेशमन उसे तुरन्त पहचान गई, बोली—खाँ आजम का आदमी था पेशमन ने उसे बुलाया। लुत्फुन्निया को उस व्यक्ति ने एक पत्र दिया और बोला—मैं यह पत्र लेकर उड़ीसा जा रहा था बहुत जरूरी है।

पत्र पढ़ते ही लुत्फुन्निया के होशहवाश उड़ गए। उसका सपनों का महल बनता-बनता गिर पड़ा। उसकी अभी आशाओं का तुषारापात हो

गया। पत्र में लिखा था—

"हम लोगों की सभी कोशिशें नाकामयाब हो गईं। मरते समय बादशाह अकबर अपनी बुद्धि बल से हमें परास्त कर सलीम को बादशाह बना कर इस दुनिया से कूच कर गए हैं। अब तुम खुसरू के बादशाह बनने का ख्याल छोड़ देना। बस तुरन्त आगरा आ जाओ।"

पुरस्कार देकर दूत को विदा कर वह पेशमन को चिट्ठी दिखाते हुए बोली—"अब क्या विचार है?"

पेशमन—नुकसान ही क्या है भला। जैसी हो वैसी ही रहोगी। मुगलराज्य की पुरनारियाँ भी दूसरे राजाओं की पटरानियों से कहीं अच्छी होती हैं।

मोती मुस्कराकर बोली—अब यह न हो सकेगा। अब मैं उस राजमहल में न रहूँगी। मेहरुन्निसा को मैं बचपन से जानती हूँ। एक बार राजमहल में जाते ही वह बादशाह की जगह ले लेगी। जहाँगीर नाममात्र के बादशाह होंगे। मैंने उनके बादशाह बनने में बाधा उपस्थित की यह उससे छिपा न रहेगा।

पेशमन दुःखी मन से बोली—फिर क्या होगा? मेहरुन्निसा अगर जहाँगीर के प्रति इतनी आसक्त न होकर शेर अफगन की अनुरागिनी बनी रहती है तो कुछ उम्मीद हो सकती है। पर अगर वह जहाँगीर पर मेहरबान है फिर तो प्रश्न ही नहीं उठता।

"तुम मेहरुन्निसा के दिल को कैसे जानोगी?"

मोती हँसकर बोली—मेरे लिए क्या असम्भव है? वह बचपन की मेरी सखी है। कल ही बर्दमान जाकर उसके पास दो दिन रहूँगी।

"यदि मेहरुन्निसा को उससे प्रेम न हुआ तो क्या करोगी?

पिताजी कहा करते थे—क्षेत्रे कर्म विधीयते।

फिर दोनों मौन हो गईं। मोती हँसते-हँसते होंठ सिकोड़ने लगी।

पेशमन ने पूछा—हँस क्यों रही हो?

"एक बात समझ में आ गई।"

शेर अफगन उस समय बंगाल का सूबेदार था और बर्दमान में रहता था। लुत्फुन्निया बर्दमान में शेर अफगन के महल में उतरी। शेर अफगन

ने उसे बहुत आदरपूर्वक अपने यहाँ ठहराया। जब शेर अफगन तथा मेहरुन्निसा आगरे में रहते थे तभी का उनसे पर्याप्त परिचय था। मेहरुन्निसा उसकी बचपन की सहेली थी दोनों में बेगम बनने की जिद् लगी हुई थी। इस समय मेहरुन्निसा विचार मग्न थी कि भारत की महारानी कौन बनेगी। यह तो भगवान् ही जानता है या फिर बादशाह जानते हैं। नहीं तो लुत्फुन्निया ही जान सकती है। देखूं लुत्फुन्निया की क्या राय है? लुत्फुन्निया भी मेहरुन्निसा के दिल की टोहने आई थी।

मेहरुन्निसा अपने कमरे में बैठी चित्रकारी कर रही थी। लुत्फुन्निया को अपने पीछे खड़ी जान कर पूछने लगी—कहो कैसी बनी है तस्वीर?

"ठीक वैसी जैसी बननी चाहिए थी, पर कमी इस बात की है तुम से टक्कर लेने वाला और कोई नहीं है—लुत्फुन्निया बोली।

मेहरुन्निसा ने जितना रूप तथा गुण पाया था इतिहासकारों ने भी उसे ठीक वैसा ही बताया है। विद्या में भी उसकी कोई बराबरी न थी। नृत्य तथा संगीत में भी अद्वितीय थी।

उसकी सरस बातें तथा सरल व्यवहार उसकी सुन्दरता के मोहक थे। काव्य-रचना तथा चित्रकारी में तो वह सबका मन मोह लेती थी। मोती या लुत्फुन्निया भी कुछ कम न थी और आज ये दोनों रमणियाँ एक जगह उपस्थित थीं।

मेहरु बोली—फिर दुःख किस बात का है?

"तुम्हारी बराबरी का। तुम्हारी तरह अगर चित्रकला में निपुण होती तो तुम्हारे बेजोड़ सौन्दर्य चेहरे का एक आदर्श पेश कर दिखाती।"

"चेहरे का आदर्श तो कब्र में रखा जाए।"

"बहन, आज तुम्हारे मन की रसिकता में यह अभाव क्यों टपक पड़ा।"

"नहीं रसिकता में कोई अभाव नहीं। बात है कल तुम्हारे से बिछुड़ने की। क्या तुम और दो दिन नहीं रुक सकतीं। इतनी कृपा कर मुझे कृतार्थ न कर सकोगी।"

"सुख की लालसा कौन नहीं करता अगर आज मैं स्वतन्त्र होती तो क्यों जाती?"

"मुझ पर अब तुम्हारा पहले जैसा प्रेम नहीं रहा। आई हो तो क्या दो दिन और नहीं रह सकतीं ?"

"मैंने बता तो दिया मेरा भाई उड़ीसा का मनसबदार है। वह युद्ध में घायल हो गया था उसी की कुशलता पूछने आई थी। बहुत दिन लग गए वहाँ अब आगरा जाना था, सोचा तुम्हें भी क्यों न मिलती जाऊँ।"

"बेगम के पास कब लौटना है।"

लुत्फुन्निया समझ गई कि मेहरु व्यंगपूर्वक कह रही थी। मार्मिक व्यंग में जितनी मेहरु निपुण थी उतनी वह स्वयं न थी फिर भी वह पीछे न रही बोली—तीन मास की लम्बी अवधि में दिन निश्चित करने का क्या अभिप्राय ? परन्तु अब तो पहले ही देर हो गई और रुकना जान जोखिम में डालना है।

मेहरु हँसकर बोली—किसके असन्तोष में जान जोखिम में डालने का खतरा है। युवराज या महिषी के।

इस पर बेशर्म लुत्फुन्निया शर्माई नहीं और बोली—दोनों का ही सम्भव है।

"मैं पूछती हूँ तुम अपने को ही बेगम क्यों नहीं कहतीं। सुना है, युवराज सलीस तुम्हें बेगम बना रहे हैं। अब देर भी क्या है ?"

"मैं अपने स्वभाव से बाध्य हूँ, किसी की गुलाम नहीं बन सकता। बेगम की सहचरी बनकर उड़ीसा आ-जा तो सकती हूँ ज़बकि बेगम बनने पर मुझे इतनी स्वतन्त्रता न होगी।"

"जो बादशाह की प्रधान महिषी हो उसे उड़ीसा आने की क्या गर्ज है ?"

"मैं सलीम की पटरानी बनूँ यह भावना मुझमें कभी पैदा नहीं हुई। दिल्लीश्वर की प्राणेश्वरी होने की योग्यता मेहरुन्निसा को छोड़कर अन्य किसी में नहीं।"

मेहरुन्निसा ने लज्जापूर्ण सिर झुका लिया और निरुत्तर हो गई। फिर बोली—बहन यह मैं नहीं जानती कि यह बात तुमने मेरी थाह लेने के लिए कही है या मुझे घायल करने के अभिप्रायः से। फिर भी मैं

बताये देती हूँ कि मैं शेर अफगन की स्त्री हूँ। मैं उसकी हृदय से दासी हूँ तुम कभी यह बात न भूलना।

निर्लज्ज लुत्फुन्निया तिरस्कार से घबराई नहीं बोली, तुम जैसी हो वो तो मुझे भली-भाँति विदित है, इसी अभिप्राय से तो मैंने कहा है। सलीम तुम्हारें रूप को नहीं भूल सकते हैं। केवल यही अभिप्राय है तुम उनसे बचकर रहना।

"अब समझी। पर भय की क्या बात है ?"

"आशंका है वैधव्य की।"

यह कहकर वह तीखी नजर से मेहरुन्निसा का मुख निहारने लगी। परन्तु मेहरुन्निसा के चेहरे पर भय तथा मुस्कान का कोई चिह्न दिखाई न पड़ा। मेहरु ने गर्व से कहा—"वैधव्य का भय ! शेर अफगन अपनी रक्षा स्वयं कर सकता है। अकबर के शासन में उसका पुत्र स्वयं भी दूसरे के प्राण लेकर चैन से नहीं जी सकता।"

"यह सच है। पर आगरे के नये समाचारों से पता चला है कि बादशाह परलोक सिधार चुके हैं। अब सलीम गद्दी पर बैठेगा। उसको कौन परास्त कर सकेगा ?"

मेहरुन्निसा ने कुछ न कहा। उसका शरीर रोमांचित हो उठा। सिर नीचा कर लिया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई।

लुत्फुन्निया ने पूछा—रो क्यों रही हो ?

मेहरु लम्बी आह भरते हुए बोली—सलीम भारत का बादशाह है पर मैं यहाँ हूँ।

मोती बीबी यानि लुत्फुन्निया की इच्छा पूर्ण हो गई—युवराज अब भी एक क्षण के लिए तुम्हें नहीं भूले हैं।

मेहरु प्रसन्न होकर बोली—किसको भुलाऊँ ! अपने जीवन को भुला दूंगी पर युवराज सलीम को न भुला सकूंगी। पर सुनो ! इस बात की किसी को कानोंकान खबर न हो। एकाएक हृदय का ढका हुआ आवरण उठ गया और तुमने मेरे दिल की थाह पा ली। तुझे मेरी सौगन्ध किसी से न कहना।

"पर जब सलीम मेरा बर्दमान से लौट आना सुनकर कुछ पूछे तो

क्या जवाब दूं।"

मेहरु सोचकर बोली—यही कहना कि वह हृदय से तुम्हें पा चुकी है। वह समय आने पर उनके पास आ सकती है पर अपने कुल तथा मान का नाश करके नहीं। इस दासी का पति अभी जिन्दा है। अभी तो वह दिल्लीश्वर को मुंह न दिखायेगी। अगर उसके पति का खून कर उसे प्राप्त करना चाहें तो इस जन्म में वह मुझे कदापि न पा सकेंगे।

यह कह मेहरुन्निसा उठ खड़ी हुई लुत्फुन्निया हैरान रह गई। पर जीत तो उसी की थी। उसने मेहरु के हृदय का भेद जान लिया था। पर उसके हृदय को मेहरु न जान सकी। वह वाक्‌चातुरी में लुत्फुन्निया से मात खा गई।

लुत्फुन्निया की आशा निराशा में परिणत हो चुकी थी परन्तु इससे उसे दुःख न हुआ, उसे सुख का ही आभास हुआ। पर ऐसा क्यों हुआ वह स्वयं भी अनभिज्ञ थी इससे। आगरे के लिए चल पड़ी और रास्ते में अपने दिल का भाव समझने का प्रयत्न करती रही।

८

लुत्फुन्निया आगरे पहुँची। कुछ दिन बाद जहाँगीर से भेंट हुई। जहाँगीर ने उससे मेहरु के विषय में पूछा तो उसने सब कुछ कह डाला। लुत्फुन्निया निःसंकोच भाव से मेहरु के हृदय की प्रेम भरी बातें सुनाती रही जिसे सुनकर बादशाह खुश हो गये। उनकी आंखों में आंसू की बड़ी-बड़ी बूंदें गिरने लगीं।

लुत्फुन्निया—दासी ने शुभ समाचार दिया है पर आपने उसे पुरस्कृत नहीं किया।

बादशाह हँसकर बोले—तुम्हारी इच्छा अपरिमित है।

"पर मेरा कसूर क्या है जहाँपनाह ?"

"तुमने दिल्ली के बादशाह को अपना गुलाम बना लिया है। फिर भी तुम इनाम चाहती हो।"

लुत्फुन्निया मुस्कराकर बोली—औरत की साध तो बहुत प्रबल है कभी मिटती ही नहीं।

"अब और क्या इच्छा है ?"

"पहले आप स्वीकृति की आज्ञा दें तो कहूँ।"

"अगर राज्य प्रबन्ध में कमी न आए।"

"राज्य प्रबन्ध सुचारु रूप से चलेगा।"

"तो ठीक रहा। कहो क्या चाहती हो ?"

"एक शादी करना।"

बादशाह—बहुत बड़ी इच्छा है क्या सगाई पक्की हो गई।

"जी हो गई पर आपकी आज्ञा में विलम्ब है, बिना आज्ञा के कुछ सम्भव नहीं।"

"इसमें आज्ञा की क्या आवश्यकता ? किस भाग्यवान को तुम अपने सौन्दर्य रूपी सागर में मस्त कर डुबाना चाहती हो ?"

"बाँदी ने दिल्लीश्वर की सेवा की है इसलिए दो पुरुषगामिनी नहीं हो सकती। वह दासी अपने पति से ही विवाह करेगी।"

"ठीक पर इस गुलाम पर क्या गुजरेगी ?"

"आपको मेहरुन्निसा दे जाऊँगी।"

"कौन है मेहरुन्निसा ?"

"जो है वही तो।"

जहाँगीर समझ गए कि मेहरुन्निसा के मलका बन जाने के पूर्ण विश्वास से परिचित होकर ही लुत्फुन्निया राज-परिवार से छुटकारा पाने का उपाय ढूँढ़ रही है।

जहाँगीर उदास हो गए। लुत्फुन्निया उन्हें यूँ देख बोली—क्या आप सहमत नहीं हैं ?

"नहीं मेरी बात नहीं है पर पति के साथ पुनः विवाह करने का क्या प्रयोजन है ?"

"प्रथम विवाह में स्वामी ने मुझे पत्नी रूप में ग्रहण न किया। अब आप दासी का विवाह करेंगे।"

बादशाह तनिक हँसे फिर गम्भीर हो गये। फिर मुस्कराते हुए

बोले—प्यारी ! ऐसी कोई चीज मेरी नहीं जो तुम्हे न दे सकूं। तुम जो चाहो ले लो। परन्तु मुझे छोड़कर कहीं न जाओ। क्या एक आकाश में चाँद-सूरज दोनों नहीं रहते। क्या एक डाली में दो फूल नहीं महकते ?

"बादशाह सलामत ! छोटे-छोटे फूल जरूर खिलते हैं पर एक मृणाल में दो कमल नहीं खिलते। जब एक मृणाल में दो कमल रह ही नहीं सकते फिर मैं हुजूर के शाही तख्त का काँटा बन कर क्यों रहूँ।"

लुत्फुन्निसा अपने महल में चली गई। उसकी यह इच्छा क्यों थी ये जहाँगीर को वह न बता सकी। उसका दरअसल वह अर्थ भी न समझ सके। लुत्फुन्निसा का हृदय पत्थर की तरह कठोर था। सलीम की नारी हृदय पर विजय पाने वाली शक्ति उसका मन न मोह सकी।

लुत्फुन्निसा महल में जाकर अपने वस्त्र बदल कर एक पेशमन को देती हुई कहती है—जा ले जा इस पोशाक को।

यह देख पेशमन विस्मित हो उठी और बोली—ये पोशाक मुझे ! आज हो क्या गया है ?"

"बहुत शुभ समाचार।"

"सो तो मालूम है क्या मेहरुन्निसा का खतरा टल गया।"

"हाँ दूर हो गया अब कोई फिकर नहीं।"

"तो अब मैं तुम्हारी दासी हुई।"

"तो दासी बनना चाहती हो तो मेहरुन्निसा से तुम्हारी सिफारिश कर दूंगी।"

"पर आप तो कह रही थीं उसके बेगम बनने की आशंका जाती रही।"

"मैंने तो कहा था इसकी मुझे अब चिन्ता नहीं।"

"चिन्ता क्यों नहीं ? आपके बेगम न होने पर सब व्यर्थ हो गया।"

"आगरे से मैं सम्बन्ध विच्छेद कर रही हूँ।"

"मेरे समझ में तो कुछ नहीं आया। फिर यह शुभ समाचार कैसा हुआ।"

"शुभ यही है कि मैं जा रही हूँ यहाँ से।"

"लेकिन कहाँ जाओगी ?"

"बंगाल, सम्भव हुआ तो किसी सद्पुरुष की पत्नी बन जाऊँगी।"

"इससे तो मेरा कलेजा डर रहा है।"

"व्यर्थ नहीं मैं सचमुच जा रही हूँ।"

"यह कुप्रवृत्ति किसके लिए ?"

"यह बुरी नीयत नहीं। इतने दिन आगरे में रह कर मैंने सम्मान, ऐश्वर्य तथा धन प्राप्त किया लेकिन सब व्यर्थ गया। मुझे कहने को एक का भी सुख न मिला। जिसके लिए मैंने अपने जीवन का हर मूल्य चुकाया वह भी न मुझे मिल सका। आज चाहूं तो इससे भी अधिक धन प्राप्त कर सकती हूं। पर इससे क्या लाभ मैं सुखी नहीं हो सकती।"

"परन्तु अब यह अच्छा क्यों नहीं लगता।"

"लगे भी कैसे ? यह आज ही तो जान पायी हूँ। राजमहलों में रह कर जो न पा सकी वह उड़ीसा से लौटते हुए एक रात में ही मुझे मिल गया।"

"अब समझ पाई।"

"क्या समझीं ?"

"मैं हिन्दू मूर्तियों की भाँति जवाहरातों से सजी हुई पत्थर की रही। इन्द्रिय-सुख की खोज करती रही पर आग में तप कर न देखा। अब देखती हूँ कि पत्थर में से कोई रक्त की शिरा आकर हृदय में मिल जाए।"

"समझ नहीं आया।"

"क्या आगरे में किसी से प्रेम किया है।"

"किसी से नहीं ?"

"फिर मैं पत्थर ही तो बनी रही।"

"अब प्रेम करना चाहती हो तो देर किस बात की ?"

"इसीलिए तो आगरा छोड़ रही हूं।"

"इसकी क्या जरूरत ? क्या आगरे में आदमी नहीं है जो दूर जा रही हो। जो तुम्हें चाहते हैं उन्हें तुम क्यों नहीं चाहतीं। रूप धन के ख्याल से बादशाह से बढ़कर अन्य कौन होगा ?"

"चन्द्रमा सूर्य के समक्ष फीका-फीका क्यों लगता है। मैं पूछूं अगर

यही प्रश्न तो ?

"अपना-अपना भाग्य है।"

लुत्फुन्निया इतना कहकर चुप हो गई।

९

लुत्फुन्निया की एक दिन नवकुमार से भेंट हुई थी। उस समय तो कुछ विशेष आकर्षण पैदा न हुआ। पर अंकुर उसी समय फूट पड़ा था। उसके बाद फिर न मिल सकी। पर बिना मिले उसकी साकार मूर्ति लुत्फुन्निया की आँखों में छायी रहती। उसकी याद उसे सताने लगी। अंकुर बढ़ चुका था उसके मन में प्रेम बढ़ चुका था। मन का धर्म भी यही है, जो मानसिक कर्म जितनी ज्यादा बार किया जाए उसके प्रति जिज्ञासा उतना ही उग्र रूप धारण करती है। धीरे-धीरे वह कार्य एक आदत-सी बन जाता है। लुत्फुन्निया रात-दिन उस चेहरे का मन में चिन्तन करने लगी। दिल्ली के तख्त की लालसा इसके समक्ष तुच्छ बन गई। राज्य, राजधानी तथा राजसिंहासन का त्याग कर वह स्वामी दर्शन को आतुर हो उठी। उसके स्वामी थे नवकुमार शर्मा।

वह सप्तग्राम पहुँची। राजपथ के समीप की नगरी की एक अट्टालिका में उसने अपना प्रबन्ध किया। वह मकान दास दासियों से भर गया। हर कमरे की शोभा निराली थी। लुत्फुन्निया एक सजे कमरे में अधोबदन बैठी थी। एक आसन पर नवकुमार बैठे थे।

कुछ देर चुप रहकर वह बोला—अब मैं चलता हूँ। फिर कभी मुझे न बुलाना।

"नहीं अभी नहीं, पूरी बात सुन लो तब जाना।"

नवकुमार ने कुछ देर प्रतीक्षा कर पुनः पूछा—तुम्हें और क्या चाहिए।

लुत्फुन्निया कोई उत्तर न दे पाई। वह रो रही थी।

यह देखकर नवकुमार उठ खड़ा हुआ। लुत्फुन्निया ने उसके पैर

पकड़ लिए । नवकुमार ने पूछा—कहो क्या कहना चाहती हो ?

"तुम क्या चाहते हो ? संसार में क्या मेरे लिए माँगने को कुछ भी नहीं है । धन, सम्पदा, मान, पद तथा ऐश्वर्य मैं सब तुम्हें दूंगी उसके बदले कुछ नहीं चाहिए केवल इन चरणों की दासी स्वीकार कर लीजिए ।"

नवकुमार बोले—गरीब ब्राह्मण हूँ । इस जन्म में कंगाल ही रहना चाहता हूँ । तुम्हारे धन को लेकर यवन न बनूंगा ।

"यवन" नवकुमार को क्या मालूम कि यह उन्हीं की पत्नी है । लुत्फुन्निया ने सिर झुका लिया । नवकुमार उससे स्वयं को छुड़ा चुके थे । वह बोली—अच्छा यह भी न सही । भगवान भी इसी में खुश हैं तो मैं अपनी इच्छाओं को अब समाप्त कर दूँगी । मैं कुछ नहीं माँगती । केवल जब तुम कभी-कभी इधर से जाओ तो मुझे जरूर मिलते रहना ।"

"तुम मुसलमान हो इस पर भी स्त्री हो, तुम्हारे पास आने पर मुझ पर कलंक लगेगा । अब कभी तुमसे मेरी भेंट न होगी ।"

कुछ देर खामोशी रही । लुत्फुन्निया के हृदय सागर में तूफान ठाठें मारने लगा । वह पत्थर की मूर्ति के समान स्थिर रही । वह उसे छोड़कर बोली—अच्छा जाओ !

नवकुमार चल दिया, अभी दो कदम ही गया था कि लुत्फुन्निया ने फिर उसे पकड़ लिया; कातर स्वर में बोली—बेरहम पत्थर दिल मैं तुम्हारे लिए दिल्ली का तख्त छोड़कर आई । तुम मुझे ठुकरा रहे हो ।

नवकुमार—तो अब लौट जाओ वहाँ । मेरी आशा करना व्यर्थ है । मैं पराई स्त्री से अनुराग भाव नहीं रख सकता ।

"इस जन्म में न सही ।" तीर की भाँति खड़ी होकर वह बोली—इस जन्म में तुम्हारी आशा न करूँ यह नामुमकिन है । वह बड़े रोब से तीखी दृष्टि से नवकुमार को देखती रही । एक शक्ति उस देह में चमक उठी । उन्मादिनी यवनी अपना मस्तष्क ऊपर उठाकर बोली—"उस जन्म में नहीं । मैं तुम्हें इसी जन्म में प्राप्त करके रहूँगी ।"

उसे देख नवकुमार सहम गया । वह जाना ही चाहते थे कि अचानक उसे अपनी प्रथम पत्नी का ख्याल आ गया । एक दिन वह अपनी पहली

पत्नी पद्मावती से रुष्ट होकर कमरे से धकेलने लगा। उस समय जितने दु:ख तथा पीड़ा से खड़ी हुई थी वह ठीक उसी के समान इसके नेत्र भी चमक उठे थे। माथे पर वैसी ही रेखाएँ थीं। उसकी नासिका सर्पिनी की भाँति फुंकार रही थी। बहुत दिनों से उसकी ओर उसका ध्यान ही न गया था उसने पूछा—"कौन हो तुम ?"

वह बोली—वही पद्मावती ?

उत्तर की प्रतीक्षा किए विना लुत्फुन्निया दूसरे कमरे में चली गई। नवकुमार सहम गया और लौट आया।

दो दिन तक वह अपने कमरे में बन्द रही फिर अपना श्रृंगार कर दासी से पूछने लगी।

क्या मैं पहचानी जा सकती हूँ ?

बिल्कुल भी नहीं।

"तो मैं चली, कोई मेरे पीछे न आना।"

"दासी को क्षमा हो तो कुछ पूछूं।"

"क्या ?"

"आप क्या चाहती हैं ?"

"कपालकुण्डला के प्रति उसके पति के मन में घृणा पैदा करके उससे सम्बन्ध विच्छेद करना तभी मेरा कार्य सफल होगा।"

"जरा सोच लो बड़ा घना जंगल है। अँधेरी रात, इस पर तुम अकेली हो।"

वह कुछ उत्तर न दे जिधर सप्तग्राम में नवकुमार का घर था उधर ही चल पड़ी। वहाँ पहुँचते-पहुँचते सर्वत्र अँधेरा फैल गया। नवकुमार के घर के पीछे घना जंगल था उसी के किनारे एक वृक्ष के नीचे विराजमान हो गई।

लुत्फुन्निया को एक कण्ठ स्वर सुनाई दिया। उसने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा उसे रोशनी में कुछ-कुछ दिखाई दिया।

लुत्फुन्निया में पुरुषों जितना साहस उपस्थित था। वह डरती नहीं थी। निर्भय उस प्रकाश की ओर चल पड़ी। उसने वृक्ष के पीछे छिपकर देखा कि रोशनी यज्ञ की थी। एक मनुष्य कण्ठ मन्त्रों का उच्चारण कर

रहा था। लुत्फुन्निया उसके पास चली गई।

१०

कपालकुण्डला को नवकुमार के साथ आए हुए एक वर्ष व्यतीत हुआ। जिस दिन लुत्फुन्निया उधर आई तो कपालकुण्डला अनमनी होकर शयन-कक्ष में बैठी हुई थी। अब वह समुद्र के किनारे की केशधारिणी आभूषण रहित कपालकुण्डला न रही। श्यामसुन्दरी की भविष्यवाणी से उसकी वेशभूषा बदल चुकी थी। पारसमणि के स्पर्श मात्र से ही योगिनी गृहणी बन चुकी थी। वह दुग्ध श्वेत जैसे उज्ज्वल वस्त्र धारण किए हुए थी जो आकाश में खेलने वाले बादलों के समान सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। अब तक असंख्य काले चमकते हुए बालों को गूंथ कर स्थूल वेणी का रूप दे दिया गया था और उसमें फूल सजा दिए थे। वेणी गूंथने में कलानैपुण्य दिखाई पड़ रहा था और जिस कारीगरी से उसका शृंगार किया गया था वह श्यामसुन्दरी के शृंगार-कौशल का एक स्पष्ट नमूना था। उसका वर्ण पूर्ण चन्द्र की किरणों की भाँति मनोहर लग रहा था। दोनों कानों में सोने के कर्णफूल झूम रहे थे। गले में चन्द्रहार पहने थी। शरीर के वर्ण से वह मलिन न हुए थे मानो अर्धचन्द्र की चाँदनी का परिधान पहने, पृथ्वी पर रात्रि की भाँति शोभायमान है।

कपालकुण्डला के पास उसकी ननद श्यामसुन्दरी बैठी है। दोनों बातें कर रही हैं।

कपालकुण्डला—नन्दोई जी अभी यहाँ कितने दिन रहेंगे ?

"कल शाम को चले जायेंगे। आज रात को भी वह औषधि लाकर रख देती तो भी उन्हें वश में करके मनुष्य जन्म सार्थक कर लेती। कल रात जरा घर से चली गई तो भैया ने देख लिया और वो फटकार दी कि अब घर से पैर बाहर रखने की हिम्मत नहीं पड़ती। दिन में लाकर रख लेते हैं।

"नहीं, दिन में तोड़ने से उसका असर चला जाएगा। उसे ठीक

आधी रात को खुले बालों से तोड़ना है। मन की साध पूर्ण न हो सकी।"

"अच्छा आज दिन के समय मैं उस बूटी को तो देख ही आई हूँ आज तुम न जाना मैं अकेली जाकर ही ले आऊँगी ?"

"एक दिन जो हो गया सो हो गया तुम घर से बाहर अकेली न जाना।"

"इसकी परवाह न करो। तुम तो जानती ही हो कि मुझे बचपन से जंगल में अकेली घूमने का अभ्यास है। यदि अभ्यास न होता तो आज तुमसे भेंट भी न होती।"

"इस भय से नहीं कह रही। रात के वक्त अकेले घूमना अच्छे घर की बहू-बेटियों के लक्षण नहीं हैं। हमारे दोनों के जाने पर इतना तिरस्कार उठाना पड़ा तब अकेली जाने पर क्या होगा ?"

"इसमें क्या हानि है। रात में जाने से क्या मैं चरित्रहीन हो जाऊँगी ?"

"मैं तो ऐसा नहीं कहूँगी पर दुष्ट लोग तो यही सोचेंगे।"

"उन्हें भौंकने दो उनके कहने से मुझे कुछ न होगा।"

"यह तो माना ! पर अगर तुम पर कोई उँगली उठाए तो यह मुझ से सहन न होगा।"

"ऐसा क्लेश न होने देना।"

"यह भी न सही पर भैया बिगड़ेंगे तुम पर।"

कपालकुण्डला ने उस पर अपना स्निग्ध कटाक्ष फेंक कर कहा—इसमें वे बिगड़ जाएँ तो मैं क्या करूँ ? यदि मुझे यह पता होता कि विवाह स्त्रियों के लिए दासता का ही दूसरा नाम है तो कभी इस बंधन में न पड़ती।

इसके बाद श्यामसुन्दरी ने इस प्रसंग को आगे न बढ़ाकर स्वयं वहाँ से उठकर घर के कामकाज में लग गई।

कपालकुण्डला भी आवश्यक कामों में व्यस्त हो गई। काम खत्म कर वह जड़ी की खोज में घर से निकल पड़ी। उस समय रात एक प्रहर बीत चुकी थी। चाँदनी चारों ओर छिटकी हुई थी। नवकुमार बाहर

कमरे में ही था। कपालकुण्डला को जाते उसने खिड़की से देख लिया। लपककर कमरे से वाहर आ उसने कपालकुण्डला की वाजू थाम ली।

कपा०—क्या वात है ?

नव०—कहाँ जा रही हो ?

"श्यामसुन्दरी अपने पति को वश में करने के लिए जड़ी चाहती है वही लेने जा रही हूँ !"

"ठीक है ! पर कल गई थीं। फिर आज क्यों जा रही हो ?"

"कल नहीं मिली, आज ढूढूँगी ?"

नवकुमार ने कोमल स्वर में कहा—क्या दिन के समय तलाश करके नहीं रख सकतीं ?

नवकुमार अत्यन्त विनम्र भाव से कह रहा था।

"दिन की लाई हुई जड़ी फलदायक नहीं होती।"

"तो तुम्हें खोजने की क्या जरूरत है मुझे नाम बता दो। मैं खोज कर ला दूंगा।"

"मैं पेड़ देखकर पहचान सकती हूँ नाम नहीं जानती। तुम्हारे तोड़ने से क्या लाभ, औरतों को खुले केश तोड़ कर लानी होती है। तुम इस परोपकार में बाधा क्यों बन रहे हो !"

कपालकुण्डला ने रोष भरे स्वर में यह वात कही।

नवकुमार ने बुरा न माना और बोला—चलो मैं तुम्हारे साथ चलूं।

कपालकुण्डला सगर्व बोली—चलो मैं विश्वास योग्य हूँ या नहीं, चलकर अपनी आँखों से देख लो, फिर तो मान जाओगे।

नवकुमार कुछ न बोला—और उसका हाथ छोड़ दिया। वह घर में लौट आया। कपालकुण्डला अकेली जंगल की ओर चल दी।

गाँव से थोड़ी ही दूरी पर घना जंगल था। कपालकुण्डला संकीर्ण जंगली पथ से अकेली जड़ी की खोज में जा रही थी। सुहावनी रात्रि के आकाश में शीतल किरणें बिखेरता हुआ चाँद चुपचाप सफेद बादलों को पीछे छोड़ रहा था।

जंगल में घूमते कपालकुण्डला को पूर्व जीवन स्मरण हो आया।

उसकी स्मृति पर समुद्री तट का दृश्य फिर ताजा हो गया। कैसे वह अकेली वहां पर स्वतन्त्रता पूर्वक घूमा करती थी। उसने आकाश की ओर देखा तो नीलमण्डल याद हो आया। कपालकुण्डला पूर्व स्मृति के जागृत होने से अनमनी-सी होती जा रही थी।

उसे कुछ भी याद न रहा कि वह किस उद्देश्य को लेकर घर से चली थी। जिस राह पर वह जा रही थी उसे भ्रम पैदा हो गया। ठीक रास्ता वह भूल चुकी थी। वन घना होता गया। सिर पर शाखा-पुंजों से चाँदनी का प्रकाश रुक गया। रास्ता सुझाई न देने से वह चौंक पड़ी। मानो नींद से जागी हो। इधर-उधर नजर उठाकर उसने प्रकाश को देखा। लुत्फुन्निया ने भी ठीक इसी रोशनी को देखा था। कपाल-कुण्डला को अभ्यस्त होने के कारण भय न लगा हाँ कुछ आशंका जरूर थी। धीरे-धीरे वह उसी प्रकाश की ओर बढ़ी, बत्ती जल रही थी। थोड़ी दूरी पर एक टूटा-फूटा-सा मकान दिखाई पड़ा। वहाँ से किसी के बात करने पर स्वर सुनाई दिया। कपालकुण्डला बिना आहट किए वहाँ जा पहुँची। उसने दो व्यक्तियों को बड़ी सावधानी से बातें करते पाया। कुछ और आगे बढ़ने पर उसे सुनाई दिया।

एक बोला—मेरा ध्येय तो मृत्यु करना ही है। इस पर यदि तुम सहमत न हो तो मैं तुम्हारी सहायता न करूँगा। तुम भी सहायता न करना।

दूसरा—"मैं भी उसका मंगलाकांक्षी नहीं हूँ किन्तु उसको आजीवन निर्वासित करने की भी मेरी इच्छा नहीं है। परन्तु हत्या की कोई भी चेष्टा मुझ से नहीं होगी। मैं, उसके विरुद्ध आचरण करूँगा।"

पहले ने कहा—तुम अभी बिल्कुल अबोध तथा नादान हो, जो उपदेश दूं उसे ध्यान से सुनो। बहुत रहस्यमयी बातें कहूंगा। पहले चारों ओर देख आओ किसी के श्वास की आवाज आ रही है।

कपालकुण्डला उस घर की दीवार के बहुत निकट आ गई थी उसी का साँस दुगने वेग से चल रहा था।

साथी के कथनानुसार एक व्यक्ति घर से बाहर निकला। आते ही उसने कपालकुण्डला को देख लिया। कपालकुण्डला ने भी स्वच्छ चाँदनी

में उस आदमी को स्पष्ट रूप से देख लिया। वह कुछ समझ न पाई कि उसे देखकर प्रसन्न हो या डरे। उसने देखा वह ब्राह्मणवेशी था। सामान्य धोती पहने हुए था। शरीर भली प्रकार चादर से ढंका हुआ था। ब्राह्मण कुमार छोटी उमर का था। वह बहुत ही कोमल तथा नवयुवक सा लग रहा था। उसके चेहरे पर एक भीषण भाव स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। परन्तु था तेजस्वी। उसके बाल पुरुषों की तरह कटे न होकर स्त्रियों की तरह घुंघराले थे। अन्तस्थल की गहराई तक पहुँचने में समर्थ कटाक्ष देखकर कपालकुण्डला सहम गई।

दोनों कुछ देर एक दूसरे को बिना पलक झपकाए देखते रहे फिर कपालकुण्डला ने अपनी आँखें झुका लीं। पलक झुकाते ही ब्राह्मण पूछ बैठा—तुम कौन हो ?

उसे यूं सहमा हुआ देख कर ब्राह्मण बोला—कपालकुण्डला ! इस भयानक रात में अकेली क्या लेने आई हो ?

एक अपरिचित के मुख से अपना नाम सुनकर वह अवाक् रह गई। उसके मुंह से कुछ उत्तर न बन पड़ा।

"क्या तुमने हमारी बातें सुन लीं ?"

सहसा कपालकुण्डला की वाक्शक्ति पुनः लौट आई। वह बोली—मैं भी यही पूछती हूँ इस अर्धरात्रि में तुम दोनों क्या षड्यन्त्र कर रहे हो ? यह सुनकर छद्मवेशी ब्राह्मण कुछ बोल न पाया। वह कपालकुण्डला का हाथ पकड़ कर कुछ दूर ले चला। यह देखकर कपालकुण्डला ने हाथ छुड़ाना चाहा। गुस्से में झटका देकर उसने अपना हाथ छुड़ा लिया। ब्राह्मण वेशधारी ने धीरे से कहा—चिन्ता मत करो मैं पुरुष नहीं हूँ।

कपालकुण्डला हैरान हो गई। इस बात पर उसे कुछ शक तो जरूर हुआ था पर विश्वास न हो सका था। उसके साथ चल पड़ी।

"हम जो कुछ कुपरामर्श कर रहे थे वो तुम्हारे ही विरुद्ध था। क्या सुनने की इच्छा है ?"

कपा०—हाँ सुनूंगी।

वह बोला—जब तक मैं वापिस न आऊं तुम यहीं मेरी राह

देखना।

यह कह वह मकान में वापिस चला गया। कपालकुण्डला कुछ देर वहाँ प्रतीक्षा में बैठी रही। उसने जो कुछ देखा था तथा सुना था इससे उसका मन भयभीत हो चुका था। अब अकेले जंगल में बैठे रहने से मन और भी शंकित हो गया। कौन जानता था कि ब्राह्मण वेशधारी उसे किस अभिप्राय: से बिठा गया था ? हो सकता है अपना ध्येय सिद्ध करने के लिए ऐसे बिठा गया हो। इस विचार के उत्पन्न होते ही उसका शरीर सिहर उठा। इधर ब्राह्मण भी लौटने में देर कर रहा था। अब तो कपालकुण्डला से बैठा न गया। वह तेज कदम बढ़ाती हुई घर को चल दी।

आकाश पर बादल छा जाने से पूर्व अन्धकार फैला हुआ था। जो थोड़ी बहुत रोशनी थी वह भी प्राय: लुप्त होती जा रही थी। अब और न ठहर कर वह जल्दी-जल्दी घर को चल दी। उसे अपने पीछे आते हुए किसी के कदमों की आहट सुनाई दी। किन्तु अन्धेरा होने के कारण पलटकर देखने से कुछ दिखाई न पड़ा। कपालकुण्डला ने अनुमान लगाया शायद वही ब्राह्मण है। जंगल से निकल कर वह क्षुद्र पगडण्डी पर पहुँच गई थी। वहाँ इतना अन्धेरा न होने से वह देख सकती थी पर उसे कुछ भी दिखाई न पड़ा। इसलिए और भी तेजी से चलने लगी। उसे फिर स्पष्ट कदमों की आहट सुनाई दी कपालकुण्डला तेजी से आगे बढ़ी अब घर समीप ही था परन्तु उस समय बूंदा-बांदी शुरू हो गई थी। आकाश में बिजली चमकने लगी और ओले बरसने लगे। कपालकुण्डला दौड़ पड़ी। द्वार उसके लिए खुले थे उसने दौड़कर दरवाजा बन्द कर लिया। उसने खिड़की में से देखा एक लम्बे कद का पुरुष आँगन में खड़ा था। तभी सहसा बिजली चमकी तो वह उस पुरुष को तुरन्त पहचान गई। वह वही समुद्र-तट निवासी कापालिक ही था।

११

कपालकुण्डला दरवाजा बन्द कर चुकी थी, शयनकक्ष में जा बिस्तर

पर लेट गई। मनुष्य हृदय अनन्त समुद्रवत् है। जब समुद्र पर प्रचण्ड वेग से वायु चलती है तो समुद्र की तरंगमालाओं को कौन गिन सकता है। यही दशा कपालकुण्डला के हृदय की थी। उसकी धड़कनों का अनुमान कौन लगा सकता था। उस दिन नवकुमार हार्दिक पीड़ा के कारण अन्तःपुर में न आए। कपालकुण्डला अकेली ही शयनकक्ष में लेटी रही पर नींद उसकी आँखों से कोसों दूर जा चुकी थी। तेज पवन के झकोरों सहित वर्षा के पानी से भीगा हुआ तथा बालों से घिरा हुआ चेहरा अँधेरे में चारों ओर देखने लगा। वह पहले की सभी घटनाओं को स्मरण करने लगी।

कापालिक को धोखा देकर वह कैसी चतुरता से भाग आई थी, कापालिक जंगल में घृणित कार्य करता था। उसे सब बातें एक-एक कर याद आने लगीं। उसकी भैरवी की पूजा, नवकुमार का उसके पंजे में फँस जाना आदि सभी दृश्य उसकी आँखों के सामने साकार हो उठे। कपालकुण्डला सिहर उठी। आज की अँधेरी रात की सभी घटनाएँ उसकी आँखों के समक्ष नाचने लगीं। श्यामा का जड़ी के लिए चिन्तन करना नवकुमार का बाधा डालना, नवकुमार के प्रति उसका तिरस्कार-पूर्ण व्यवहार, उसके बाद वन की छलनामयी शोभा, घना अँधेरा, वन के नए निवासी और वेशधारी ब्राह्मण का अनेक गुणयुक्त किन्तु विकराल स्वरूप, सभी कुछ उसे याद आने लगे।

पूर्व दिशा में जब भास्कर देवता अपनी किरणों का रथ लेकर उपस्थित हो गए तब उसको तन्द्रा ने आ घेरा। उस अर्धनिद्रा में कपालकुण्डला स्वप्नलोक में विचरण करने लगी। क्या देखती है जैसे वही समुद्र तट है। उसके वक्ष पर नाव चली जा रही है। नाव सजी हुई है उस पर पीला झंडा लहरा रहा है। नाविकों ने फूलों के हार पहने हुए हैं और भगवान के प्रेम-गीत अलाप रहे हैं। पश्चिम में सूर्य की स्वर्णिम किरणें दूर-दूर तक फैल रही हैं। सुनहली धारा के संगीत से समुद्र अठखेलियाँ कर रहा है मानो आकाश में बादल उस सुनहली दृष्टि में हँसते-कूदते हुए स्नान कर रहे हों। अकस्मात ही अँधेरा छा गया! सूर्य न जाने कहाँ जाकर छिप गया, सुनहले बादल भी पंख लगाकर उड़ चुके

थे। घने काले बादलों ने आकाश को घेर लिया। नविकों के लिए समुद्र की दिशाएँ मालूम करना कठिन हो गया। उन्होंने नाव लौटा दी। डर से उनकी हँसी खुशी गायब हो गई। उन्होंने गीत गाने बन्द कर गगरे तोड़ समुद्र में फेंक दिए। पीला झंडा भी समुद्र में गिर गया। तूफान उठा और बहुत ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। तभी उन लहरों में से एक जटाधारी लम्बे कद के आदमी ने निकलकर कपालकुण्डला की नाव को पकड़कर पूछा—तुम्हें बचा लूं या डुबो दूं।

उसके मुंह से सहसा निकल गया—डुबो दो! ब्राह्मण ने नाव छोड़ दी। पर वह बोल उठी—अब मैं नाव का भार न सँभाल सकूंगी। तभी नाव उसे जल में गिराकर पाताल में जाने लगी।

कपालकुण्डला का शरीर पसीने से तर हो गया था। एकाएक उसका स्वप्न भंग हुआ। देखा सवेरा हो गया था खिड़की से वासन्ती पवन प्रवेश पा रहा था। मन्द-मन्द हिल रही वृक्षों की डालियों पर पक्षी चहक रहे थे। उन झरोखों पर कुछ मन लुभावनी बेलें सुगन्धित फूलों से भरपूर नाच रही थीं। कपालकुण्डला स्त्री स्वभाव से उन लताओं को सहलाती हुई उन्हें बाँधने लगी। तभी हवा के झोंके से एक पत्र उनमें से गिर पड़ा। कपालकुण्डला को पुजारी की शिष्या होने के कारण अक्षर-ज्ञान था ही। वह पत्र पढ़ने लगी जो यूं था—"आज संन्ध्या के पश्चात् उसी ब्राह्मण से भेंट करना। अपने सम्बन्ध में अत्यन्त रहस्यमयी तथा परमावश्यक बात जानना चाहती हो तो अपने कानों से सुन लेना—अहं ब्राह्मण वेशधारी।

कपालकुण्डला दिन भर उसी छद्मवेशी ब्राह्मण के विचार में ही विचारमग्न रही कि उससे मिलना उचित है कि नहीं। एक पतिव्रता स्त्री के लिए निर्जन वन में पर पुरुष से भेंट करना कहाँ तक उचित है। यह विचार कर उसके मन में कुछ हिचकिचाहट-सी थी। फिर उसका इरादा इस कारण में पक्का हो गया। भेंट का उद्देश्य निन्दनीय न होने से भेंट में दोष ही कैसा—पुरुष पुरुष से मिल सकते हैं—स्त्री स्त्री से। पर अकेली स्त्री पुरुष से क्यों नहीं मिल सकती? स्त्री पुरुष को भी भेंट करने का ऐसा ही हक प्राप्त होना चाहिए! जब कि उस ब्राह्मण

के पुरुष होने में उसे सन्देह था। इसलिए वह हिचकिचाहट स्थिर न रह सकी। किन्तु इस भेंट से कुछ शुभ होगा या अमंगल इसका उसे कुछ भी ज्ञान न था। वह सोचने लगी, पहले छद्मवेशी ब्राह्मण से उसकी भेंट होना फिर कापालिक का उसका पीछा करना, उसके बाद स्वप्न का आना। इन सब कारणों से उसका दिल भय से भर उठा। वह अपने अमंगल की कल्पना मात्र से ही शंकित हो गई फिर जबकि वह कह रहा था कि षड्यंत्र उसी से सम्बन्धित है। इसलिए भेंट करना भी जोखिम उठाना ही है। वह साथी जरूर कापालिक का ही होगा। किन्तु यह भी सम्भव है कि वह बच निकलने का कोई मार्ग निकाल ले। जिस व्यक्ति से वह गुप्त बातचीत कर रहा था। वह यही कापालिक होगा। इस कुमंत्रणा में जब ब्राह्मणवेशी भी सहकारी है तो उससे मिलना कहाँ की बुद्धिमत्ता है ? लेकिन रात में जो स्वप्न देखा था उससे तो जान पड़ता है वह उसकी रक्षा ही करेगा। क्या वह स्वप्न की तरह मुझे डुबोने से बचा लेगा। हो सकता है माता ने ही इसे भेजा हो। इसलिए वह भेंट के लिए मन-ही-मन राजी हो गई।

संध्या के बाद घरेलू कार्यों से अवकाश पाने के बाद वह पिछले दिन की तरह जंगल की ओर चल पड़ी। जाते समय उसने शयनकक्ष में बत्ती को उकसाकर कुछ तेज कर दिया। कमरे से बाहर जाते ही वह बुझ गई।

जाते समय उसे यह याद न रहा कि ब्राह्मण ने उसे किस स्थान पर भेंट करने को लिखा था। वह लौटकर कमरे में आ पत्र ढूँढ़ने लगी। पर पत्र वहाँ न था। उसे याद आया कि पत्र तो उसने जूड़े में बाँध लिया था। तब उसने उँगली से जूड़ा टटोला पर पत्र उसे न मिला और बाल बिखर गये। जब पत्र अन्य स्थानों पर भी न मिला तो वह भेंट के लिए घबराहट में ही चल पड़ी। अब उसे बाल बाँधने का भी ध्यान न रहा।

शाम को जब कपालकुण्डला घर के काम में व्यस्त थी तो चिट्ठी खिसक कर गिर गई थी पर कपालकुण्डला को कुछ पता न चला। नवकुमार ने पत्र को देखकर उठा लिया। जूड़े से पत्र गिरता देखकर नवकुमार सतर्क हो गया था। कपालकुण्डला के वहाँ से हट जाने पर वह पत्र पढ़ने लगा और मन में ही कहने लगा—जो बात तुम कल जानने

को उत्सुक थीं वह आज सुनोगी।"

चिट्ठी पढ़कर नवकुमार रो पड़े। पहले तो वह कुछ अनुमान न लगा सके। पर धीरे-धीरे भ्रम बढ़ता गया और शरीर मारे क्रोध के जलने लगा। मनुष्य हृदय विकट दुःख तथा अधिक सुख तुरन्त ग्रहण न कर धीरे-धीरे ग्रहण करता है। कुछ दिन से वह महसूस करता था कि कपालकुण्डला उसका बराबर तिरस्कार कर गर्व से बात करती है। विशेषकर जहाँ जाने से उसे रोका जाता था वह जिद्द कर अकेली वहाँ जाती थी। जिस किसी के साथ देखा अपनी इच्छानुसार आचरण करती थी। इसके अलावा गत रात को उसका कहना टालकर जंगल में अकेले चले जाना। और कोई होता तो अवश्य सन्देह कर लेता पर नवकुमार के दिल में उसके प्रति तनिक भी सन्देह उत्पन्न न हुआ पर आज तो सन्देह की जरूरत ही क्या थी प्रत्यक्ष प्रमाण जो सामने था।

नवकुमार ने अपने क्रोध पर नियन्त्रण पाकर कपालकुण्डला को कुछ न कहने का निश्चय कर लिया। रात को जब वह जायेगी तो उसका पीछा करेगा। कपालकुण्डला को कुछ न कह अपने जीवन का दीपक बुझा देगा।

कपालकुण्डला के जाते ही उसने भी उसका पीछा किया। कपाल-कुण्डला के वापस लौटने पर वह दुबारा उसका पीछा करने को निकला तभी एक दैवकाय पुरुष को द्वार पर खड़े पाया। पर उसकी चिन्ता न कर वह उसे धक्का देकर हटाने लगा पर वह हटा नहीं। तब नवकुमार ने पूछा—कौन हो तुम ? हट जाओ ! मेरा रास्ता छोड़ दो।

"क्या मुझे नहीं पहचानते ?" नवकुमार ने गौर से देखा यह वही समुद्रतट निवासी कापालिक ही था।

नवकुमार चौंका, पर डरा नहीं। एकाएक उसकी मुख-मुद्रा प्रसन्न हो उठी उसने पूछा—क्या कपालकुण्डला आप ही से मिलने जाती है ?

कापा०—"नहीं ?"

जलने के साथ ही दीपक के बुझ जाने की तरह नवकुमार का चेहरा भी मलीन हो गया। उसने कहा—तो फिर मेरा रास्ता छोड़ दो।

"हट जाऊँगा, पर पहले जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ उसे सुनते

आग्रो।"

नब०—तुम्हारी बातें कसे सुनूं ! क्या फिर मेरी बलि लेने आये हो ? इस बार तुम शौक से मेरे प्राण ले लो। किन्तु थोड़ा रुको मैं अभी आ जाऊंगा लौटकर। मैंने देवता को अपना जीवन भेंट न दिया इसी का फल मुझे मिला है। जिसने मुझे प्राणदान दिये आज वही मेरा सर्वनाश करने पर तुला है। कापालिक, इस बार विश्वास करना मैं इन्हीं पांवों लौटकर अपने-आपको आपके अर्पण कर दूंगा।

"मैं तुम्हारी बलि नहीं चाहता। भवानी की यह इच्छा नहीं है। मैं जो करने आया हूं तुम्हारा भी यही अभिप्राय है। अन्दर चलो मैं तुम्हें सब बताऊंगा।"

नव०—अभी नहीं, लौटकर सब सुनूंगा। अभी मुझे एक जरूरी काम है उससे निबट कर मैं आपके पास आ जाऊँगा।

कापा०—बेटा, देखो मुझे सब मालूम है, तुम उस पापिष्ठा का पीछा करना चाहते हो, वह जहाँ जाएगी यह मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ। मैं तुम्हें वहाँ अपने साथ ले जाऊँगा। तुम जो चाहते हो वही दिखाऊँगा पर पहले मेरी बात सुन लो। डरो मत, भय की कोई बात नहीं।

नव०—अब मुझे आपसे डर ही कैसा है ?

यह कह वह कापालिक के साथ मकान में प्रवेश कर बैठ गया और स्वयं ही बोला, अब कहो ?

कापालिक ने अपनी दोनों भुजाएं नवकुमार को दिखाईं। नवकुमार ने देखा दोनों टूट चुकी थीं।

"इन हाथों में अब शक्ति नहीं रही कि एक टहनी भी उठा सकें। पृथ्वी पर गिरते ही मेरी दोनों भुजायें टूट गईं और वेहोश हो गया। प्रातः जब मुझे होश आया तो मैंने स्वप्न देखा कि भवानी मेरे समक्ष आकर खड़ी हो गई थी। भौंहें तरेर कर मुझे झिड़क रही थी और बोली—ओ दुराचारी ! तेरा ही हृदय पवित्र न होने के कारण मेरी पूजा में यह विघ्न पड़ा। तूने इतने दिनों तक इन्द्रिय लालसा के वश में होकर कुमारी के खून से मेरी पूजा नहीं की। इसी कारण इस कुमारी के द्वारा तेरा अनिष्ट हुआ। मैं तेरे हाथ की पूजा न लूंगी। तब मैं रोकर

माँ के चरणों में गिर पड़ा। तब प्रसन्न हो माँ बोली, ओ भद्र पुरुष। इसका अब प्रायश्चित्त यही है कि तू कपालकुण्डला के खून से मेरी पूजा कर। जब तक यह न करेगा मेरी पूजा न करना।

कितने दिनों बाद रोग-मुक्त होने पर मैं फिर देवी की आज्ञा पालन करने के प्रयत्न में जुट गया पर अब इन बाँहों में शक्ति न थी। मेरे सब प्रयत्न बेकार हो गए। इस कारण मुझे एक साथी की जरूरत है। पर इस यवन राज्य में शुभ कार्य की सिद्धि में कौन किसी का साथ दे पाता है। बड़ी मुश्किल से इस पापिष्ठा का निवास-स्थान खोज सका हूँ। पर बिना बाँहों के मैं अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकता। केवल मानस सिद्धि मन्त्र उच्चारण अनुसार जप-होम ही कर पाता हूँ। कल रात को समीप ही वन में जब मैं होम कर रहा था तो इसको मैंने ब्राह्मण से बातें करते देखा। आज भी वहीं गई होगी। देखना चाहते हो तो आओ मेरे साथ।"

नवकुमार कापालिक के साथ चल पड़ा। उसका शरीर पसीने से लथपथ हो चुका था।

१२

कपालकुण्डला घर से निकल कर जंगल में घुसी। पहले वह उस टूटे मकान में पहुँची। यहाँ छद्मवेशी ब्राह्मण उसी की प्रतीक्षा में बैठा था। वह बोला, आओ यहाँ से उठकर सामने जो वृक्षों से घिरा मैदान है वहीं चल कर बैठें।

ब्राह्मण बोला पहले मैं अपना परिचय देता हूँ—"मैं वही यवन कन्या हूँ जिससे तुम्हारी भेंट जब तुम अपने पति समेत हिजली प्रदेश से चली आ रही थीं, हुई थी।

कपालकुण्डला हैरान होकर बोली—जिसने मुझे आभूषण पहनाए थे?

"हाँ वही हूँ।"

कपालकुण्डला आश्चर्य में पड़ गई। उसे यूँ हैरान देख वह बोली, लो और सुनो एक आश्चर्य की बात कि मैं तुम्हारी सौत हूँ।

कपालकुण्डला चौंककर बोली—वह कैसे ?

लुत्फुन्निया उसे अपना परिचय देने लगी।

कपालकुण्डला ने पूछा—तुमने किस इच्छा को लेकर हमारे घर में कदम रखा ?

लुत्फुन्निया—तुमसे तुम्हारे पति का चिर-विछोह करा देने की कामना से।

कपालकुण्डला कुछ सोचकर बोली—इस कार्य को तुम कैसे सम्पन्न करतीं ?

लुत्फु०—अभी तक तो किसी तरह तुम्हारे पति के मन में तुम्हारे आचरण के प्रति सन्देह पैदा कर देती। पर अब छोड़ो उस बात को अगर तुम मुझसे सहमत होकर मेरी बात मान लो तो मेरे साथ-साथ तुम्हारा भी उपकार होगा।

कपा०—कापालिक के मुख से किसका नाम सुना था ?

"तुम्हारा नाम ! वह तुम्हारे अमंगल की कामना से यज्ञ कर रहा था। मैं भी यह जानने के लिए वहाँ जा बैठी। छलपूर्वक मैंने यज्ञ का भेद पा लिया। वह तुम्हारे ही अनिष्ट के लिए कर रहा था। मेरा भी यही इरादा था। पर तुम्हारी मृत्यु ही उसका अभीष्ट है पर इसमें मेरा क्या उपकार। मैं इतनी पतित हूँ कि मैंने इस जन्म में केवल पाप ही किए हैं परन्तु इतनी नहीं कि एक निरपराध स्त्री की हत्या की इच्छा रखूँ। मैं इस पर तैयार न हुई तभी तुम आ पहुँचीं। शायद तुमने सुना भी होगा।"

"मैंने केवल तर्क ही सुना था।"

"उस व्यक्ति ने मुझे अबोध जानकर शिक्षा देनी शुरू की। अन्त में क्या निश्चय हुआ यही जानने के लिए मैं तुम्हें एकान्त में बिठाकर पूछने गई थी उसके पास।"

"फिर वापस क्यों नहीं आई ?"

कापालिक ने तुम्हारी पूरी कहानी सुनाई। जिसे सुनते-सुनते देर

लग गई ।

लुत्फुन्निया ने बाँहों का टूटना तथा भवानी के दर्शन द्वारा दी गई आज्ञा का सब किस्सा सुना दिया ।

स्वप्न की बात से कपालकुण्डला चौंकी ।

कापालिक भवानी की आज्ञा पालने में किसी की मदद चाहता है। वह मुझे ब्राह्मणकुमार समझकर मुझसे यह काम करवाना चाहता है पर मुझे माननीय नहीं है, न ही करूँगी । स्वार्थवश मैंने इतना किया है । मैं तुम्हें प्राणदान देती हूँ । क्या इतना करने के बाद बदले में मेरे लिए कुछ कर सकती हो ?

"मैं क्या कर सकती हूं ?"

"इसके बदले में तुम्हें अपने पति को छोड़ना होगा ।'

कपा०—स्वामी को छोड़कर कहाँ जाऊँगी ?

"मैं तुम्हें धन, दास-दासियाँ दूंगी । एक पत्र भी दूंगी अपनी सखी के नाम, वहाँ जाकर तुम सुख से रहना ।

कपालकुण्डला चिन्ता में डूब गई । उसे इधर-उधर कहीं भी नवकुमार न दिखाई दिया । तब वह लुत्फुन्निया से बोली—तुमने मेरी क्या सहायता की है कुछ नहीं जानती । धन, दास, दासी मुझे कुछ भी नहीं चाहिए । मैं तुम्हारे सुख में रोड़ा न बनूंगी । कल तुम मुझे न पाओगी । मैं योगिनी थी सो योगिनी बनकर ही रहूँगी ।

लुत्फुन्निया आश्चर्य में पड़ गई । उसे इतनी शीघ्र कपालकुण्डला के मान जाने का अनुमान न था । वह बोली—तुमने मुझे जीवनदान दिया है मैं तुम्हें अनाथ होकर न जाने दूंगी । मेरी एक चतुर दासी तुम्हारे साथ रहेगी । वर्दमान में एक महिला मेरी मित्र है वह तुम्हारी सहायता करेगी ।

कपालकुण्डला लुत्फुन्निया की बातें सुनती रही । दूर खड़े कापालिक तथा नवकुमार उन्हें देख रहे थे । दुर्भाग्यवश उनकी बातें सुनाई न पड़ रही थीं ।

नवकुमार ने कपालकुण्डला की बिखरी हुई केशराशि देखी । जब वह योगिनी थी तब इसी तरह रहती थी । उसके बाल ब्रह्माण्ड की पीठ

पर उड़कर जा रहे थे। नवकुमार यह देखकर सिर थाम जमीन पर बैठ गया। कापालिक बोला—"धैर्य रखो, हताश न हो, लो यह भवानी का प्रसाद ले लो।" यह कह उसमें से शराब निकाल उसे पीने को दी। उसके पीते ही वह एकदम स्वस्थ हो गया।

लुत्फुन्निया रूपी ब्राह्मण ने कहा—"बहन ! तुमने आज जो काम किया है उसका बदला देने का बल मुझमें नहीं है। फिर भी मैं तुम्हें याद रखूँ यही मेरे लिए सुखप्रद होगा। मैंने सुना जो गहने मैंने तुम्हें दिये थे तुमने भिखारी को दे दिये। तुम मेरी यह अँगूठी रख लो। इसे देख मुझे याद कर लिया करना। यदि स्वामी पूछें तो कहना लुत्फुन्निया ने दी है। यह कह उसने अँगुठी कपालकुण्डला को पहना दी। नवकुमार ने भी देखा कापालिक ने उसको पकड़ रखा था। उसे काँपते देखकर उसे और शराब पिला दी।

कपालकुण्डला धीरे-धीरे घर को चल दी। इधर नवकुमार तथा कापालिक कपालकुण्डला की नजर बचाकर उसका पीछा करने लगे। वह बहुत गहरी चिन्ता में डूबी हुई चली जा रही थी। उसकी धारणा बदल चुकी थी। वह अपने को खत्म कर डालना चाहती थी। लुत्फुन्निया के लिए नहीं। कपालकुण्डला के हृदय पर तान्त्रिक की छाप थी वह तांत्रिक की सन्तान जो ठहरी। इसलिए वह आत्मविसर्जन के लिए तैयार थी।

कपालकुण्डला ने मन-ही-मन पूछा—अपने इस नश्वर शरीर को भगवान के अर्पण क्यों न करूँ ? इसे बचाने से क्या लाभ ?

कपालकुण्डला सिर नीचा किए बढ़ती चली जा रही थी तभी उसे आवाज सुनाई दी।

जैसे कोई कह रहा हो—बेटी ठहर ! राह मैं दिखाती हूँ।" कपालकुण्डला ने नजरें उठाकर देखा, नभ में माता की मूर्ति थी उसके गले में नरमुण्डमाला से खून बह रहा था।

कपालकुण्डला ऊपर देख चलने लगी। देवी रूप उसे राह दिखा रहा था। उसे देख वह चलती जा रही थी।

नवकुमार और कापालिक कुछ न सुन सके। नवकुमार बोला—

कापालिक मुझे प्यास लगी है।

कापालिक ने उसे शराब पिलाई फिर गम्भीर स्वर में बोला—अब देर क्यों कर रहे हो ?

नवकुमार—अब क्या देर है ?

कपालकुण्डला—हाँ, हाँ, देर कैसी ?

नवकुमार ने जोर से पुकारा—कपालकुण्डले।

कपालकुण्डला हैरान होकर पलट कर खड़ी हो गई। अभी तक किसी ने उसका नाम उच्चारण कर न पुकारा था। नवकुमार तथा कापालिक उसके सामने थे। "वह बोली क्या तुम यमदूत हो ?"

फिर बोली—नहीं नहीं पिता जी ! आप मेरी बलि लेने आए हैं। चलो ! मैं तैयार हूँ।

नवकुमार ने कपालकुण्डला का हाथ पकड़ लिया कापालिक बोला—मेरे साथ आओ तुम।

कापालिक श्मशान घाट की ओर बढ़ता चला गया।

कपालकुण्डला ने आकाश की ओर नजर उठाकर देखा माता की मूर्ति उसे हँसती हुई दिखाई दी। वह नवकुमार के साथ चलती रही।

कापालिक कपालकुण्डला को अपने पूजा के स्थान पर ले गया। गंगा तट पर वह रेतीली भूमि थी। वहाँ दीपक तथा जलती हुई लकड़ियों से होने वाला प्रकाश ही था जो उसकी भयानकता को उग्र रूप दे रहा था। समीप ही होम और बलि का सब सामान पड़ा हुआ था।

कापालिक ने नवकुमार तथा कपालकुण्डला को उपयुक्त जगह बिठाया और स्वयं पूजा में जुट गया।

पूजा के बाद उसने कपालकुण्डला को स्नान करवा लाने के लिए नवकुमार को कहा।

कापालिक की आज्ञा पाते ही नवकुमार उसे स्नान करवाने ले गया। नवकुमार के पैर की ठोकर से श्मशान का एक घड़ा टूट गया। उसके पास एक शव पड़ा था, दोनों के पाँव उसे स्पर्श कर गए। शव खाने वाले पशु वहाँ घूम रहे थे। सब चिल्ला पड़े। कोई आक्रमण करने को तैयार हो गया तैश में आकर तो कोई डर कर भाग गया। कपालकुण्डला निर्भय

थी पर नवकुमार का शरीर काँप रहा था।

कपालकुण्डला बोली—स्वामी ! आपको डर महसूस हो रहा है।

नवकुमार से अब शराब का नशा उतर रहा था। वह गम्भीर हो बोला—मृण्मयी डर कैसा ?

"फिर काँप क्यों रहे हो ?"

यह प्रश्न उसके रमणी हृदय का द्योतक था।

"भय से नहीं, रो नहीं पाया, क्रोध से काँप रहा हूँ।"

"आपके रोने का कारण सुनूं तो ?"

"रोने का कारण तुम क्या जानोगी मृण्मयी, तुम तो कभी सौन्दर्य देख पागल नहीं हुई ?" यह कहते-कहते उसका स्वर भारी हो गया।

"तुम तो अभी अपना कलेजा स्वयं काटने के लिए यहाँ तक चली आई हो"—यह कहकर वह हिचकियाँ भरकर रोता हुआ कपालकुण्डला के चरणों पर गिर पड़ा और बोला—मृण्मयी ! एक बार तुम इतना मुझे विश्वास दिला दो कि मैं अविश्वासिनी नहीं हूँ मैं तुम्हें अभी गले से लगा कर घर लौटा ले जाऊँगा।

कपालकुण्डला ने उसे सहारा देकर उठाते हुए कहा—अब इसके लिए वक्त ही कितना बाकी है। तुम तो पिता जी की आज्ञानुसार मुझे स्नान करवा कर माता की बलि देकर अपनी आत्मा को शान्त कर लोगे।

क्या इतना होने पर भी वह स्त्री विश्वास की पात्री नहीं, जिसने इतनी कठिन परीक्षा दी हो।

मृण्मयी के इन शब्दों ने नवकुमार के दिल पर पड़े भ्रम के आवरण को नंगा कर दिया। उसके दिल से शराब का नशा एकदम गायब हो गया। वह बोला—कपालकुण्डले मुझे क्षमा कर दो।

कपालकुण्डला मुस्कराकर मधुर स्वर से बोली—आप पति हैं मेरे, मुझसे क्षमा याचना कर मुझे पाप की अधिकारिणी न बनाओ मैं तो यही प्रार्थना आपसे करती हूँ।

नवकुमार अपने पर काबू न पा फिर उसके पैरों पर गिर पड़े। उसके पैरों को पूर्ण शक्ति से थाम लिया। उसके पैर नवकुमार के आँसूओं ने धो डाले।

कपालकुण्डला आकाश की ओर देख रही थी। माता की मूर्ति को समक्ष देखकर बोली—माता मैं आ रही हूँ अब देर नहीं है।

नवकुमार—मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा मृण्मयी! तुम्हें मुझसे छीनकर कोई न ले जा सकेगा।

तभी जोर से बिजली कड़की। माता दोनों हाथ फैला उसे बुला रही थी?

कपालकुण्डला ने माता के फैले हुए हाथों को देखा। नवकुमार को कुछ भी सुनाई न दिया।

नवकुमार उसके चरणों में अविरल अश्रुधारा बहा रहा था।

"आप रो रहे हैं। माता का कार्य पूर्ण करने में आपको इतना कष्ट क्यों हो रहा है। आप हिम्मत न हारो। एक दिन माता के चरणों पर आपकी बलि चढ़ने को थी तो मैंने आपको बचाया था। अपने उस पाप का प्रायश्चित मैं अपने प्राण देकर करूँगी।"

कपाकुण्डला—प्राणनाथ! पिता की आज्ञा मानो। कहीं ऐसा न हो वह आपको भी श्राप दे डालें। वह बहुत भयंकर हैं।

"मुझे कापालिक की चिन्ता नहीं है मृण्मयी! मैं तो सिर्फ यह जानना चाहता हूँ वह ब्राह्मणकुमार कौन था?

यह सुनकर कपालकुण्डला के अधरों पर मुस्कान फैल गई। वह मधुर वचन बोली—माता के चरणों में मुझे अर्पित करने के बाद, मुझ अविश्वासिनी से छुट्टी पा लेने के बाद स्वयं ही उसका परिचय पा जाओगे।

अब नवकुमार का पूर्ण नशा गायब हो गया था वह कपालकुण्डला के अपूर्व मनमोहक चेहरे को निहार रहा था। इस समय वह सागर-तट पर दर्शन स्तब्ध कर देने वाली रमणी के चेहरे के समान लग रहा था।

कपाकुण्डला—वह ब्राह्मणकुमार मेरा कुछ नहीं। उसका सम्बन्ध आपसे ही है। आप उसे न पहचान सके। उसमें मेरा क्या दोष। आपने ही तो उससे मेरा परिचय करवाया था।

"मैंने! मैंने तो उसे आज तक नहीं देखा।"

"यही बात कल आप मेरे न रहने पर कहेंगे।"

"अच्छा तो फिर इस बात में भी मैं ही दोषी रहा ।"

"दोषी कैसे ।"

"तुम्हीं तो कह रही हो। मैंने उससे तुम्हारी जान-पहचान करवाई थी ।"

"झूठ भी कैसे कहूँ ! तुम मुझे भगवान् समान हो। पुजारी ने भी विवाह के समय कहा था—बेटी पति ही स्त्री का धर्म है।

नवकुमार का सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। उस ब्राह्मण का रूप उसकी आँखों के सामने साकार हो उठा पर वह उसे पहचानने में असमर्थ था।

उसके विषय में कुछ सोच विचारकर वह बोला—"क्या सच कह रही हो मृण्मयी ?"

"मैंने कभी झूठ बोला है आपसे ?"

"परिचय तो आप स्वयं मुझसे बढ़कर जानते हैं ।"

"पर मैं तो उसे जानता भी नहीं ।"

"तनिक धैर्य रखो, मेरा उपकार कर घर जाने पर आपको स्वयं मालूम हो जायेगा ।"

"तो तुम मुझे कुछ न बताकर मेरे हृदय की आग को शान्त न करोगी ।"

मृण्मयी मुस्कराकर बोली—जिसके प्रति आपके हृदय में अटूट विश्वास भरा हो क्या उसे मैं नष्ट करना चाहूँगी ?"

नवकुमार की आँखों ने आँसुओं की झड़ी लगा दी। कपालकुण्डला का भी यही हाल था। तभी सहसा भयानक गर्जना हुई। कपालकुण्डला ने ऊपर देखा और बोली—माता ! मुझे माफ करना अब और देर न करूँगी। अविश्वासिनी बनकर जीने से क्या लाभ ?

१३

लुत्फुन्निया मृण्मयी से भेंट करके कापालिक की कुटिया की ओर चल

पड़ी। इस आशय से कि वहाँ कापालिक भी पहुँच गया होगा। पर वहाँ कापालिक का नामोनिशान न था। लुत्फुन्निया यहीं उसकी राह देखने लगी।

कुछ देर बाद तीन परछाइयों को श्मशान की ओर जाते देखा। उसने ध्यान से देखा उसमें एक स्त्री भी थी।

लुत्फुन्निया को समझने में अधिक बुद्धि से काम न लेना पड़ा। उन तीनों में वह स्त्री कपालकुण्डला ही थी और आगे चलने वाला कापालिक के सिवाय अन्य कोई न था।

पर वह उस व्यक्ति को न पहचान सकी जो कपालकुण्डला का हाथ पकड़े जा रहा था।

लुत्फुन्निया को सन्देह हुआ कि किसी अन्य की सहायता से वह कपालकुण्डला का वध करने जा रहा है। अब उसको भी कुछ अनिष्ट होने का भ्रम हुआ।

लुत्फुन्निया का सम्पूर्ण शरीर काँप उठा। वह कपालकुण्डला के अमंगल की कल्पनामत्र से व्याकुल हो उठी।

कापालिक जैसे ही श्मशान की ओर बढ़ा हुआ पूजा के स्थान पर पहुँचा वह भी पेड़ों की आड़ में उसका पीछा करने लगी।

लुत्फुन्निया ने यज्ञ की लकड़ियों से आ रहे प्रकाश में देखा कि कपालकुण्डला का हाथ पकड़े हुए जा रहा व्यक्ति उसी का पति नवकुमार था।

लुत्फुन्निया कुछ समझ न पाई। वह वृक्ष के पीछे छिपी हुई सब बातें सुनने लगी। उसने नवकुमार को कापालिक द्वारा दी गई शराब को पीते हुए देखा। उसका बदन सिहर उठा।

कापालिक ने पूजा समाप्त कर नवकुमार से कपालकुण्डला को गंगा स्नान करवा लाने को कहा तो नवकुमार उसे साथ लेकर चल पड़ा। लुत्फुन्निया भी दबे पाँव उन दोनों का पीछा करने लगी। कापालिक उसे देख न पाया।

नवकुमार एक शव को ठोकर मारकर कपालकुण्डला का हाथ पकड़े ज्योंही आगे बढ़ा लुत्फुन्निया केले की भाँति काँप गई।

वह एक वृक्ष की आड़ में खड़ी हो गई क्योंकि वह उनके बिल्कुल

समीप पहुँच चुकी थी। अतएव उनकी बातें सुनने लगी।

नवकुमार कह रहा था—कपालकुण्डले सच मानो मैंने कभी उस ब्राह्मण को नहीं देखा है। तुम्हें तो यूँ ही भ्रम है कि मैंने उससे तुम्हारा परिचय करवाया था।

कपा०—भ्रम मुझे नहीं आपको है। आपने उसे भी इतने ही सामीप्य से देखा है जितने सामीप्य से मुझे देख रहे हो, मैं अविश्वासिनी हूँ यह भ्रम आपके ही मन में पैदा हुआ है।

"मैं नहीं लोग ऐसा कहते हैं।"

कपालकुण्डला हँस पड़ी पर नवकुमार आश्चर्य में डूब गया।

"तो यही यकीन है आपका मेरे लिए। क्या इसी जोर पर मुझे अपनी पत्नी कहते हैं? क्या विश्वास की केवल आपको जरूरत है मुझे नहीं हो सकती? मेरे प्रति आपके दिल में बुरे भाव पैदा होना क्या मेरा अनादर नहीं है?"

कपालकुण्डला पागल जैसी हो गई। दोनों हाथ जोड़ आकाश की ओर देखती हुई बोली—माता मैं आ रही हूँ आपके चरणों में अपना जीवन सफल करने के लिए।

नवकुमार से अब रहा न गया वह काँप उठा—कपालकुण्डले अब घर चलो। मुझे माफ़ कर दो। मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है।

"अपराध तो मुझसे हुआ है स्वामी। मैंने माता की पूजा में बाधा उपस्थित की। मैं अपनी बलि देकर उसका प्रायश्चित कर लूँगी। आप लौट जाएँ। आपकी उसी ब्राह्मण से भेंट होगी।"

"मुझे उस ब्राह्मण से क्या लगाव। मैं उससे मिलना नहीं चाहता। कपालकुण्डले केवल एक बार घर लौट चलो। एक बार तुमने मुझे प्राण-दान दिए अब उन्हीं का नाश करने पर तुली हो।

"आपको अपनी पहली पत्नी मिल जाएगी। उसके साथ रहकर आपका जीवन सार्थक हो जाएगा। इस योगिनी के पास अविश्वास के सिवा और था ही क्या देने के लिए? अब तो आपसे क्षमा चाहती हूँ—वह गम्भीर होकर बोली।

नवकुमार रो पड़ा।

कपालकुण्डला ने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा, आप मेरा मोह न कर घर को जाओ। मैं तो पिता जी की आज्ञा पालन करने का संकल्प कर चुकी हूँ। आपके मन में जो अंकुर पैदा हो गया वह किसी दिन फूल का रूप भी धारण कर लेगा। मैं अपने प्राणों का त्याग करने में ही अपना कर्त्तव्य समझती हूँ।

तभी कापालिक का भयंकर स्वर गूंज पड़ा।

"बेटा नवकुमार! माता प्रतीक्षा कर रही है तुम इस पापिष्ठा को स्नान करवा कर नहीं लौटे। जल्दी आओ।

उसी समय लुत्फुन्निया वृक्ष के पीछे से आकर कपालकुण्डला के सामने खड़ी हो गई। कपालकुण्डला लुत्फुन्निया की ओर इशारा कर बोली—यही है वह ब्राह्मणकुमार क्या इसका परिचय आपने ही मुझे नहीं दिया था। क्या इन्होंने अपने बहुमूल्य गहने मुझे पहनने को नहीं दिये थे। क्या यह आपकी वही पूर्व पत्नी पद्मावती नहीं है? आपके रास्ते का मैं जो काँटा बनी अब सदा के लिए जा रही हूँ।

वह पद्मावती से बोली—बहन! जो धन तथा ऐश्वर्य आप मुझे देना चाहती थीं वह अपने पति तथा अपने लिए संभाल कर रखना।

इतना कह उसने नवकुमार के चरणों की रज ले माथे पर लगा ली और प्रणाम किया।

नवकुमार के आँसू थे कि रुक नहीं पा रहे थे। कपालकुण्डला आकाश की ओर देख रही थी।

तभी कपालकुण्डला बिजली की सी तेजी के साथ गंगा मैया की गोद में कूद पड़ी नेत्र बन्द किए हुए। गंगा उसे बहा ले गई।

तभी लुत्फुन्निया चौंक कर बोली—ये तुमने क्या कर दिया, कपालकुण्डले!

नवकुमार ने सरिता में कूद पड़ने का एक धड़ाम का शब्द सुना तो वह भी उधर ही दौड़ पड़ा।

लुत्फुन्निया ने उसे रोका पर वह बहुत आगे निकल चुका था।

नवकुमार ने एक बार नदी की लहरों वाली धारा को देखा पर उन्हें कपालकुण्डला कहीं दिखाई न दी। वह भी धारा में कूद पड़े।

नदी में जल बहुत अधिक था और उस पर पानी का प्रबल वेग। नवकुमार अच्छे तैराक थे फिर भी कपालकुण्डला को प्राप्त न कर सके।

लुत्फुन्निया किनारे पर खड़ी उनका नाम लेकर पुकार रही थी। नवकुमार के मुख से अंतिम बार कपालकुण्डला का नाम उसे सुनाई पड़ा जो सरिता की तेज लहरों से टकरा कर खो गया।

दोनों माता की वलि चढ़ चुके थे।

लुत्फुन्निया वहीं सरिता के किनारे बैठ अपनी किस्मत पर आँसू बहाने लगी।

गंगा के उस प्रबल प्रवाह में वासन्ती पवन तरंगों से टकराते हुए कपालकुण्डला तथा नवकुमार न जाने कहाँ अन्तर्ध्यान हो गए।

• • •

Acc. No. 77889
Date 12/3/92

I. I. A. S. LIBRARY

Acc. No.

This book was issued from the library on the date last stamped. It is due back within one month of its date of issue, if not recalled earlier.

बंकिम-साहित्य (उपन्यास)

आनन्दमठ

कपाल कुण्डला

देवी चौधरानी

राजसिंह

विषवृक्ष

दुर्गेशनन्दिनी

सीताराम

मृणालिनी

इन्दिरा-राधारानी

राजमोहन की स्त्री

बंकिम साहित्य

सुरुचिपूर्ण सजीव
भारतीय जीवन दृष्टि
का साहित्य पढ़िए
और इष्ट मित्रों को
उपहार में भेंट
दीजिए ।